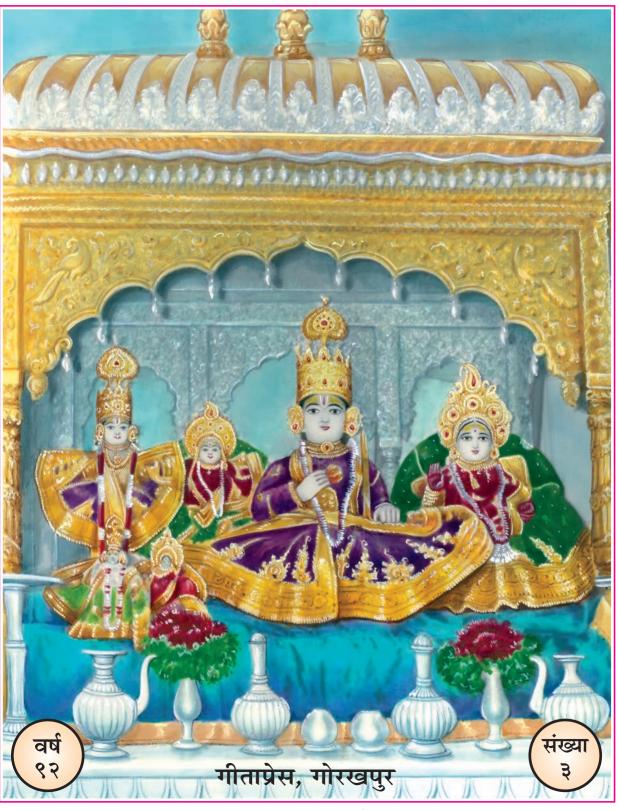
# कल्याण



कनकभवनकी दिव्य झाँकी





🕉 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलेश्वर्येकवासं शिवम्। सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्।।

संख्या गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, मार्च २०१८ ई० पूर्ण संख्या १०९६

### नारदजीका भक्तिको उपदेश

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति॥

卐

卐

卐 卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात्। पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः॥ 卐 त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका। त्वयाहृतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि॥ 卐 मुक्तिसाधकौ। कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी॥ सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ 卐 卐 इति निश्चित्य चिद्रपः सद्रुपां त्वां ससर्ज ह। परमानन्दिचन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम्।। 卐 [ नारदजीने कहा — ] हे बाले! तुम व्यर्थ ही अपनेको क्यों खेदमें डाल रही हो? अरे! तुम इतनी चिन्तातुर 卐 क्यों हो? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करो, उनकी कृपासे तुम्हारा सारा दु:ख दूर हो जायगा। 卐

जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाथ किया था, वे श्रीकृष्ण कहीं चले थोड़े ही गये हैं। फिर तुम तो भिक्त हो और सदा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हो; तुम्हारे बुलानेपर तो भगवान् नीचोंके 卐 卐 घरोंमे भी चले जाते हैं। सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किंतु

कलियुगमें तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति करानेवाली है। यह सोचकर ही परमानन्दिचन्मूर्ति ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने अपने सत्यस्वरूपसे तुम्हें रचा है; तुम साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रिया और परम सुन्दरी हो। [ पद्मपुराण ] 卐

卐

卐

	हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥	
(संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, मार्च २०१८ ई०		
विषय-सूची		
१- नारदजीका भिक्तको उपदेश	हिषय  १६ - संत श्रीदेवराहा बाबाके वचनामृत (वैकुण्ठवासी श्री श्री १००८ श्रीगोकुलदासजीद्वारा संकलित) [प्रेषक—श्रीललनप्रसादजी सिन्हा] १४ १७ - पथिक [आध्यात्मिक कथा] (श्रीसत्यप्रकाशजी किरण) १५ १८ - ज्ञान-कोष [प्रेरक कथा] १९ १८ - अनन्य भगवत्प्रेमसे ही जीवनकी सार्थकता (श्रीभँवरलालजी परिहार) १७ २० - सपनोंको यथार्थमें कैसे बदलते हैं ? (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) ११ २१ - राम-दर्शन [कविता] (सैयद कासिमअली विशारद) ३२ २२ - सादगी [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') ३३ २३ - मूर्ति या छिबमें भगवान् (रायसाहेब श्रीकृष्णलालजी बाफणा) ३६ २४ - सदुपदेश [कविता] (गिरधर किवराय) १७ २५ - स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी सरस्वती [संत-चिरत] (महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण) ३८ २६ - गोमूत्रसे कैंसरका सफल इलाज (श्रीडमेशजी पोरवाल) ४१ २७ - साधनोपयोगी पत्र १३ २८ - कृतात्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रत-पर्व] ४५ २९ - कृपानुभूति १४ - स्रो प्रस्को स्रो स्रो	
१५- में तुम्हारे अंग-संग हूँ [प्रेषक—श्री एम०के० रायजी] २३ ३१- मनन करने योग्य चित्र-सूची १- कनकभवनकी दिव्य झाँकी		
२- नारद-भिक्त-संवाद	रंगा)६ '')३१	
जय जय विश्वरूप हरि जय		
संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रब आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन ' सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहर केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़	
website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org 09235400242/244		
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर	I', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online Magazine Subscription option को click करें yan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।	

कल्याण

कल्याण

कल्याण

कल्याण

कल्याण

कल्याण

वाद रखो—मानव-जीवनकी सफलता भगवत् पड़ेगा और विविध योनियोंमे अनेकों प्रकारके भीषण प्राप्तिमें है, विषयभोगोंकी प्राप्तिमें नहीं। जो मनुष्य दु:ख भोगनेके लिये बाध्य होना पड़ेगा। जीवनके असली लक्ष्य भगवान्को भूलकर विषयभोगोंकी वाद रखो—बुद्धिमान् मनुष्य वही है, जो इन प्राप्ति और उनके भोगमें ही रचा-पचा रहता है, वह दु:ख उत्पन्न करनेवाले विषयभोगोंमें मनको नहीं अपने दुर्लभ अमूल्य जीवनको केवल व्यर्थ ही नहीं खो फँसाता और भगवान्का स्मरण करता हुआ जगत्के रहा, वरं अमृत देकर बदलेमें भयानक विष ले रहा है। सारे काम उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार नाट्यमंचपर

प्राप्ति और उनके भोगमें ही रचा-पचा रहता है, वह अपने दुर्लभ अमूल्य जीवनको केवल व्यर्थ ही नहीं खो रहा, वरं अमृत देकर बदलेमें भयानक विष ले रहा है। याद रखो — बहुत जन्मोंके बाद बड़े पुण्यबल तथा भगवत्कृपासे जीवको मानव-शरीर प्राप्त होता है; इन्द्रियोंके भोग तो अन्यान्य योनियोंमे भी मिलते हैं, पर भगवत्प्राप्तिका साधन तो केवल इसी शरीरमें है, इसको पाकर भी जो मनुष्य विषयभोगोंमें ही फँसा रहता है — वह तो पशुसे भी अधिक मूढ़ है। याद रखो — यदि तुमने इस जीवनमें भगवान्को नहीं प्राप्त किया — कम-से-कम भगवत्प्राप्तिके पथपर नहीं आ गये तो तुम्हें पीछे इतना पछताना पड़ेगा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अतः हाथमें आये हुए इस महान् सुअवसरके एक-एक क्षणको बडी ही सावधानीके साथ जीवनके असली लक्ष्य

याद रखों—यहाँके जिन धन-ऐश्वर्य, पद-अधिकार, यश-कीर्ति और मान-मर्यादाके लिये तुम पागल हो रहे हो; उनमेंसे कोई भी, कभी भी, तुमको तृप्ति नहीं दे सकेंगे। उनके अधूरेपनमें कभी पूर्णता आयेगी ही नहीं, और इस कारण तुम्हारी कमी कभी पूरी होगी ही नहीं।

भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही लगाना चाहिये।

पूरी होगी ही नहीं।

याद रखो—इन विषयोंकी प्राप्तिके लिये जो
तुम दिन-रात भाँति-भाँतिके नये-नये पाप कर रहे हो,
इसीमें अपना कल्याण समझ रहे हो और गौरवका
अनुभव कर रहे हो, यह तुम्हारे लिये बहुत ही घातक
होगा। इससे तुम्हें जीवनमें कभी शान्ति और सुख तो

मिलेगा ही नहीं; वरं वह सदा निराशा, दु:ख, चिन्ता, शोक और विषादसे भरा रहेगा। मरनेके बाद भी तुम्हें

इस पापके भारी बोझको ढोकर अपने साथ ले जाना

असलमें वही सच्चा मनुष्य है। याद रखों—तुम मनुष्य हो; अपने मनुष्यत्वको सदा जगाये रखो। एक क्षणके लिये भी भगवान्को मत भूलो। सदा स्मरण रखो कि यहाँ इस शरीरमें भगवान्ने तुमको पशुकी भाँति केवल इन्द्रियभोगोंके भोगके लिये ही नहीं भेजा है। तुम्हें उस बहुत बड़ी सफलताको प्राप्त करना है, जिससे अबतक तुम वंचित रहते आये हो। वह सफलता है—भगवत्प्राप्ति!

अभिनेता अपने स्वॉॅंगके अनुसार खेल करता है। जो

केवल प्रभुको रिझानेके लिये सारे कार्य करता है,

मनुष्य निरन्तर भगवान्में मन रखकर ही जगत्के कार्य करता है, उनमें कभी मनको फँसाता नहीं है—वहीं चतुर है। जीवननिर्वाहके लिये जो काम आवश्यक हो, उसे करो, पर करो भगवान्को याद रखते हुए ही। लक्ष्यपर दृष्टि रखकर ही।

याद रखो—भगवान्से विरोधी विषयको भूलकर

याद रखो-इसी सफलताको लक्ष्य बनाकर जो

भी ग्रहण करना बहुत बड़ी हानि है। अतएव वहीं बात सोचो, वहीं काम करो, जो शुभ है। शुभ वहीं है, जो भगवान्के अनुकूल है। आँखोंसे कभी बुरी चीजें, गन्दे दृश्य, स्त्रियोंके हाव-भाव मत देखो; कानोंसे कभी गन्दी बात मत सुनो; जीभसे कभी गन्दे—अशुभ शब्द मत उच्चारण करो। आँखोंसे

कानोंसे कभी गन्दी बात मत सुनो; जीभसे कभी गन्दे—अशुभ शब्द मत उच्चारण करो। आँखोंसे भगवत्-सम्बन्धी वस्तुओं और जीभसे भगवान्के नाम-गुण-लीला, धाम, तत्त्व और महत्त्वका वर्णन करो। ऐसा करनेपर ही तुम जीवनकी सफलताको प्राप्त कर सकोगे। 'शिव'

श्रीकनकभवन—भगवान् श्रीरामका लीला-निकेतन परिचय

## ( श्रीत्रिलोकीदासजी खण्डेलवाल )

आध्यात्मिक स्मारक है। रामकथाके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें माँ कैकेयीद्वारा महारानी सीताको विवाहोपहारके रूपमें

दिया गया यह पौराणिक भवन आज भी द्वापर और

रामनगरी अयोध्यामें स्थित श्रीकनकभवन एक

त्रेतायुगकी कितनी ही घटनाओंका साक्षी है। मुगलकालीन अयोध्याने इतिहासके कितने ही उतार-चढ़ाव देखे, पर कनकभवनका स्वर्णिम सौष्ठव अक्षुण्ण बना रहा। आज

है। हमारी आजकी पीढ़ीके लिये यह कनकभवन सांस्कृतिक विरासतका प्रतीक है, जिसका ऐतिहासिक

भी रामभक्तोंकी आस्थाका यह तीर्थस्थल करोडों नर-

नारियोंको आकृष्टकर रामकथाको अपने ढंगसे सुना रहा

# गौरव और माहात्म्य समझना सभीके लिये आवश्यक है।

श्रीकनकभवनका माहात्म्य

भगवान् श्रीराम दिव्यता, शक्ति, शील, विनय, मर्यादा, करुणा और असीम सौन्दर्यके प्रतीक हैं। वे ऋषियों, मुनियों और कवियोंके ही आराध्य नहीं, शबरी और निषाद-जैसे साधारण लोगोंके भी पूज्य हैं। वे

दुखियोंके त्राता, निर्बलोंके सम्बल, रोगियोंके आरोग्य,

निराश लोगोंकी आशा और भटके हुओंके आकाशदीप

आनन्दका केन्द्र रहा है। कनकभवनमें श्रीसीतारामजीकी मूर्तियोंमें जो दिव्यता, आकर्षण और रमणीयता है, वह अद्भृत है, इसलिये भक्तजन यहाँ जीवन-संतापको भूलकर सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं और भगवान् श्रीसीतारामके दर्शनकर अपनेको धन्य

त्रेतायुग

कि कनकभवनका प्रथम निर्माण श्रीरामके लीला-

निकेतनके रूपमें महारानी कैकेयीके अनुरोधपर महाराज

अति विशिष्ट एवं धन्य है और इस अयोध्यापुरीमें भी श्रीरामका लीलानिकेतन—श्रीकनकभवन विश्वके समस्त

इस कलियुगमें यह कनकभवन भगवान् श्रीरामका

देव-भवनोंमें विलक्षण तथा अपूर्व आनन्ददायी है।

साक्षात् विग्रह है तथा इस मन्दिरमें श्रीसीतारामजीकी मूर्तियोंका दर्शन भगवान् श्रीराम एवं जगन्माता सीताजीके साक्षात् सामीप्यका आभास देता है, इसलिये दर्शनार्थियों एवं भक्तजनोंके लिये यह कनकभवन सदासे परम श्रद्धा

भगवान् श्रीरामका अवतार त्रेतायुगमें हुआ। यद्यपि अयोध्या त्रेतायुगसे भी पूर्वकी नगरी है, किंतु प्रसिद्धि है

एवं कृतार्थ मानते हैं।

दशरथद्वारा करवाया गया था। जब श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके साथ चले गये तो महारानी कैकेयीको स्वप्नमें एक स्वर्णभवनका आभास हुआ। कैकेयीने उस स्वर्णभवनके अनुरूप ही एक भवनके निर्माण करनेका महाराज दशरथसे अनुनय किया और महाराजने विश्वकर्माकी देखरेखमें श्रेष्ठ शिल्पकारोंके हाथोंसे

नव-निर्मित कनकभवनको अपनी बहु सीताजीको भेंट कर दिया। इसके बाद कनकभवन श्रीराम और जगन्माता सीताजीका आवास बन गया और तभीसे यह भवन आज

कलात्मक कनकभवनकी रचना करवायी। सीता-स्वयंवरके

पश्चात् जब श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न जनकपुरीमें

विवाहित होकर अयोध्या लौटे तो महारानी कैकेयीने उस

हैं। जन-जनके मनमें रमण करनेवाले ऐसे भगवान सहस्रों शताब्दियोंके बादतक भी जन-मानसका आराध्य-

श्रीकनकभवन-बिहारीकी छबि-माधुरी संख्या ३ ] ओरछा-राज्यके पूर्व नरेश सवाई महेन्द्र श्रीप्रतापसिंहकी द्वापरयुग धर्मपत्नी महारानी वृषभानुकुँवरिद्वारा वैशाख दशमी सं० त्रेतामें भगवान् श्रीरामके बाद उनके पुत्र कुशने कनकभवनमें श्रीराम और सीताजीकी मूर्तियाँ स्थापित १९४४ (सन् १८८७ ई०)-को हुआ और शेख कादर कीं, किंतु कालान्तरमें अयोध्याके राजवंशके पराभवके बख्शकी देखरेखमें बनवाकर उन्होंने वैशाख शुक्ला बाद अयोध्याका रूप बदल गया और इसीमें कनकभवन षष्ठी सं० १९४८ (सन् १८९१ ई०)-को विक्रमादित्य-कालीन मूर्तियोंकी पुनः स्थापना करवायी तथा भी जर्जर होकर ढह गया। कनकभवनसे प्राप्त हुए विक्रमादित्यकालीन एक शिलालेखके अनुसार द्वापरमें सीतारामजीकी दो नवीन मूर्तियोंकी प्राण-प्रतिष्ठा भी जब श्रीकृष्ण जरासंधका वधकर प्रमुख तीर्थोंकी यात्रा करवायी। इस प्रकार कनकभवनके गर्भगृहमें प्राचीन करते हुए अयोध्या आये और कनकभवनके टीलेपर मूर्तियाँ एवं विक्रमादित्यकालीन मूर्तियाँ भी अवस्थित हैं। महारानी वृषभानुकुँवरिने इन मूर्तियोंके लिये ६ लाख पहुँचे तो उन्होंने एक पद्मासना देवीको तपस्या करते हुए देखा और टीलेसे श्रीराम-सीताकी मूर्तियाँ निकालकर रुपयेके स्वर्णाभूषण और जवाहरात भी कनकभवनको उस देवीको भेंटकर वे द्वारका चले गये। अर्पित कर दिये। महारानीने शेख कादर बख्शके उस देवीने कनकभवनका जीर्णोद्धार करवाकर वे निर्देशनमें कनकभवनके ऊपर अत्यन्त भावपूर्ण अष्टकुंजोंका मूर्तियाँ पुनः स्थापित कीं। इस प्रकार कलियुगके प्रारम्भ निर्माण भी करवाया, जिसमें सेविकाओंके आठ अति होनेतक ये मूर्तियाँ कनकभवनमें सेव्य रहीं। रमणीय चित्र बने हुए हैं। कालान्तरमें महाराज विक्रमादित्यने आजसे लगभग कनकभवनमें विभिन्न अवसरोंपर उत्सवोंकी सुन्दर २०७५ वर्ष-पूर्व कनकभवनका पुनः निर्माण करवाया। शृंखला आयोजित होती है। मंगला, वल्लभा, शृंगार, गुप्तकालमें समुद्रगुप्तने भी अयोध्याको अपनी राजधानी राजभोग, उत्थापन, संध्या और शयन-आरतियोंमें श्रीसीता-बनाकर कनकभवनका जीर्णोद्धार करवाया। सन् १७६१ रामकी विभिन्न झाँकियोंके भी मनोरम दर्शन होते हैं। ई० में भक्त कवि श्रीरसिकअली अयोध्या आये। जब वे श्रीसीतारामका यह लीला-निकेतन तथा उन्हींका कनकभवनमें दर्शनहेतु गये तो वहीं समाधिस्थ हो गये विग्रह-रूप यह कनकभवन हजारों वर्षोंसे लाखों-करोडों दर्शनार्थियोंका आनन्ददाता रहा है। यह कनकभवन और उन्हें साक्षात् सीतारामजीके दर्शन हुए। फिर वे भी कनकभवनके जीर्णोद्धारमें जुटे। उन्होंने कनकभवनके हमारे परम पूज्य भगवान् श्रीसीतारामका पुनीत प्रतीक है, अष्टकुंजका निर्माण शुरू किया, किंतु अर्थाभावके यह हमारे दीर्घकालीन इतिहास और परम्पराके क्षेत्रमें कारण यह पूरा नहीं हो सका। धर्म और संस्कृतिकी ऊँची पताका है। यह कनकभवन अयोध्याके वर्तमान कनकभवनके निर्माणका प्रारम्भ कोटि-कोटि हिन्दू-जनताका आराधना-स्थल है। श्रीकनकभवन-बिहारीकी छबि-माधुरी प्रफुल्लित कपोल मुसकान चंद \* लोचन रसीले औ कटीले 法法法法 चितवनि चपल 'जयरामदेव' अंग रंग बरषत छिब की तरंग लागै प्रेमिन प्यारी को \* तेरी, के बिहारी माधुरी विश्वमंडल सों न्यारी

भगवान्की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण

भाग ९२

जिसमें सबका हित हो, ऐसा कपटरहित सरल वचन

से-भारी कष्ट पड़नेपर भी लज्जा, भय, लोभ, काम

अथवा किसी भी कारणसे मर्यादाका त्याग नहीं करना।

महापुरुषोंका संग, सेवा-सत्कार, नमस्कार और उनकी

करनेपर अन्त:करणकी शुद्धि होकर भगवान्की प्राप्ति

गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व, रहस्यकी बातोंको सुनते-सुनते

अघाते नहीं, जिनके नेत्र केवल भगवान्के दर्शनोंके लिये

ही चातक और चकोरकी भाँति लालायित रहते हैं, जिनकी

वाणी प्रेमपूर्वक भगवानुके गुणोंका ही गान करती रहती

है, जिनकी नासिका भगवान्के स्वरूप तथा भगवान्को

अर्पण किये हुए पुष्प, चन्दन, माला, तुलसी, नैवेद्य आदिकी

गन्धको लेकर मग्न होती रहती है, जिनकी जिह्वा भगवान्के

अर्पण किये हुए प्रसादका ही आस्वादन करती है तथा जो

नर-नारी भगवान्को अर्पण करके ही और भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही भगवान्का प्रसाद समझकर वस्त्र

और आभूषण धारण करते हैं, जो मनुष्य अपने शरीरसे

ईश्वर, देवता और ब्राह्मणोंका तथा वर्ण, आश्रम, गुण, पद

और अवस्थामें जो अपनेसे बडे हों, उनका प्रेम और

विनयपूर्वक आदर-सत्कार, सेवा, आज्ञापालन और नमस्कार

करते हैं, जो एकमात्र भगवानुपर ही निर्भर रहकर हाथोंके

द्वारा भगवानुकी सेवा, पूजा श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे

करके मुग्ध होते हैं, जो भगवान्के लीलाविग्रहों और

उनके भक्तोंके दर्शनार्थ ही चरणोंसे तीर्थोंमें जाते और

आज्ञाका पालन करना इत्यादि।

—सदा शास्त्रकी मर्यादाका पालन करना। भारी-

इस प्रकारके उत्तम आचरणोंको नि:स्वार्थभावसे

इसके सिवा, जिनके कान भगवान्के नाम, रूप,

### (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बोलना।

हो जाती है।

उत्तम गुण और उत्तम आचरण शीघ्र परमात्माकी

प्राप्ति करानेवाले हैं। उत्तम गुणोंसे अभिप्राय है—हृदयके कोई अपना अनिष्ट भी करे तो भी उसका हित ही करना।

उत्तम भाव और उत्तम आचरणोंसे अभिप्राय है—मन,

-वाणीके द्वारा भगवान्के नामका प्रेम और

वाणी और शरीरकी उत्तम क्रिया। इनमें उत्तम क्रियाओंसे

आदरपूर्वक निरन्तर जप करना तथा सत्-शास्त्रोंका उत्तम भावोंका संगठन होता है और उत्तम भाव होनेसे स्वाध्याय करना एवं जो सत्य और प्रिय हो तथा

उत्तम क्रियाएँ स्वाभाविक ही होती हैं। ये परस्पर एक-दुसरेके सहायक हैं, फिर भी क्रियाकी अपेक्षा भाव

प्रधान है। जैसे कोई मनुष्य दूसरोंके अनिष्टके लिये यज्ञ,

दान, तप आदि करता है तो उसकी वह क्रिया तामसी

है और वही क्रिया यदि पुत्र, स्त्री, धन और स्वर्ग

आदिके लिये की जाती है तो राजसी है तथा निष्कामभावसे

संसारके हितके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ करनेपर वही क्रिया

सात्त्विकी हो जाती है। क्रिया एक होते हुए भी भाव

उत्तम होनेसे वह उत्तम फलदायक बन जाती है।

वे सब तो नरकमें ले जानेवाली हैं, उनकी तो यहाँ

कोई चर्चा ही नहीं है। वे तो सर्वथा त्याज्य हैं। जो

कल्याणकारक आचरण हैं, जो भगवत्प्राप्तिमें सहायक

हैं, उन्हींकी यहाँ चर्चा की जाती है। वे सब आचरण

भी निष्कामभावसे किये जानेपर ही कल्याण करनेवाले

होते हैं। इसलिये शास्त्रोक्त उत्तम क्रियाओंका आचरण

निष्कामभावसे ही करना चाहिये। क्रियाएँ कौन-कौन-

सी हैं, उनका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है-

रखना तथा घर और वस्त्रोंको भी शुद्ध और स्वच्छ रखना।

स्त्रीका अथवा पुरुष या बालकका अश्लीलभावसे दर्शन,

भाषण, स्पर्श, चिन्तन, एकान्तवास आदि कभी न करना।

प्राणीको किसी भी निमित्तसे किंचिन्मात्र भी कभी दु:ख न

पहँचाना, बल्कि अभिमानका त्याग करके नि:स्वार्थ

नि:स्वार्थभावसे व्यवहार करना।

—सबके साथ सरलता, विनय, प्रेम और आदरपूर्वक

—शरीरको जल और मृत्तिकासे शुद्ध और स्वच्छ

—ब्रह्मचर्यका पालन करना। किसी भी सुन्दरी युवती

—मन, वाणी, शरीरसे किसी क्षुद्र-से-क्षुद्र भी

जो दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थकी क्रियाएँ हैं,

इसलिये क्रियाकी अपेक्षा भाव ही प्रधान है।

भावसे सबका सब प्रकारसे परम हित ही करते रहना।

संख्या ३ ]	
\$	*************************************
श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनमें स्नान करते हैं, जो भगवान्के	एकमात्र भगवान्में ही स्वाभाविक निष्काम प्रेम है, ऐसे
नामका श्रद्धा–भक्तिपूर्वक जप करते हैं, जो शास्त्र–विधिके	मनुष्योंके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं।
अनुसार नित्य दान, श्राद्ध, तर्पण, होम, बाह्मण-भोजन	यों तो भगवान् सब जगह समानभावसे व्यापक हैं
श्रद्धा-प्रेमपूर्वक करते हैं, जो माता, पिता, स्वामी, आचार्य	ही, किंतु जिनके हृदयका भाव उपर्युक्त प्रकारसे उत्तमोत्तम
आदि गुरुजनोंको भगवान्से भी बढ़कर समझते तथा उनकी	सद्गुणों और भगवत्प्रेमसे युक्त है, उनके हृदयमें भगवान्
सब प्रकारसे श्रद्धा, भक्ति और आदरपूर्वक सेवा, सत्कार	विशेषरूपसे विराजमान हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—
और पूजा करते हैं—इस प्रकार जो केवल भगवान्में प्रेम	समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
होनेके लिये ही श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भक्तिसंयुक्त उपर्युक्त आचरण	ये भजन्ति तु मां भक्त्या मिय ते तेषु चाप्यहम्॥
करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं।	(९।२९)
जिनके हृदयमें सम्पूर्ण दुर्गुणोंका अभाव होकर	'मैं सब भूतोंमे समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा
सद्गुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उनके हृदयमें भगवान्	अप्रिय है; और न कोई प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको
विशेषरूपसे निवास करते हैं और वे शीघ्र ही परमात्माक	प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष
निकट पहुँच जाते हैं।	प्रकट हूँ।'
जिनमें काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार-अभिमान,	यद्यपि ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियोंमें
मद-मत्सर, दम्भ-दर्प, राग-द्वेष, छल-कपट, अशान्ति-	भगवान् अन्तर्यामीरूपसे समभावसे व्याप्त हैं, इसलिये
क्षोभ, आलस्य-प्रमाद, भोगवासना और विक्षेप आदिका	उनका सबमें समभाव है और समस्त चराचर प्राणी उनमें
अत्यन्त अभाव हो गया है, जो सबके हेतुरहित प्रेमी,	सदा स्थित हैं तथापि भगवान्का अपने भक्तोंको अपने
सबके हितमें रत, सुख-दु:ख, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान,	हृदयमें विशेष रूपसे धारण करना और उनके हृदयमें
जय-पराजय, लाभ-अलाभमें सम हैं, जिनके मनमें भगवान्के	स्वयं प्रत्यक्षरूपसे निवास करना भक्तोंकी अनन्य भक्तिके
सिवा अन्य कोई आश्रय नहीं है, जो निरन्तर भगवान्के ही	कारण ही होता है।
शरण हैं, जिन्हें भगवान् प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हैं,	जैसे समभावसे सब जगह प्रकाश देनेवाला सूर्य
जिनका भगवान्में ही अनन्य विशुद्ध प्रेम है, जो माता-	दर्पण आदि स्वच्छ पदार्थींमें प्रतिबिम्बित होता है,
पिता, भाई-बन्धु, मित्र, स्वामी, गुरु, धन, विद्या, प्राण—	काष्ठादिमें नहीं होता तथापि उसमें विषमता नहीं है; वैसे
सर्वस्व एक भगवान्को ही मानते हैं, जो परनारीको माताके	ही भक्तोंके हृदयमें विशेषरूपसे विराजमान होनेपर भी
समान और पराये धनको विषके समान समझते हैं, जो	भगवान्में विषमता नहीं है।
दूसरोंके दु:खसे दुखी और दूसरोंके सुखसे ही सुखी रहते	जिनका किसीसे भी द्वेष नहीं, सबपर हेतुरहित दया
हैं, जो दूसरोंके अवगुणोंको नहीं देखते हैं, उनके गुणोंको	और प्रेम है, जो क्षमाशील हैं, अहंकार और ममताका
ही ग्रहण करते हैं, जो गौ, ब्राह्मण और समस्त प्राणियोंके	जिनमें अत्यन्त अभाव है, जिन्होंने अपने मन, बुद्धि और
हितमें रत हैं, जो नीतिमें निपुण हैं, जो अपनेमें जो कुछ	इन्द्रियाँ वशमें करके भगवान्में ही लगा दिये हैं, जिनसे
अच्छाई है, उसे भगवान्की कृपा समझते हैं और अपनेमें	किसीको भी उद्वेग नहीं होता, जिनका हृदय इच्छा, भय,
जो बुराई है, उसे अपने स्वभावका दोष मानते हैं, भगवान्के	उद्वेग और आसक्तिका अत्यन्त अभाव होकर परम शुद्ध
भक्तोंमें जिनका प्रेम है, जो जाति, पॉॅंति, धन, घर, परिवार,	हो गया है, जो पक्षपातरहित और दक्ष हैं, जो संसारसे
धर्म, बड़ाई आदि सबमें आसक्तिका त्यागकर भगवान्को	उदासीन और विरक्त हैं, जिनमें कर्मोंके कर्तापन और
ही हृदय में धारण किये रहते हैं, जिनकी दृष्टिमें स्वर्ग,	फलेच्छाका अत्यन्त अभाव है, हर्ष-शोकका भी जिनमें
नरक और मोक्ष समान हैं, जो सर्वत्र भगवान्को ही देखते	अत्यन्त अभाव है, जिनका वैरी-मित्रमें, शीत-उष्णमें,
रहते हैं, जो मन, वाणी और शरीरसे भगवान्के ही सच्चे	अनुकूलता-प्रतिकूलतामें और मिट्टी-स्वर्णमें समान भाव
सेवक हैं और जो कभी कुछ भी नहीं चाहते, प्रत्युत जिनका	है, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणी, पदार्थ, भाव, क्रिया और

परिस्थितिमें जिनका समान भाव रहता है, जो भगवानुके ही शरण हो जाता है, अपने आपको ईश्वरके समर्पण कर विधानमें हर समय सन्तुष्ट हैं, घर और देहमें अभिमानसे देता है, उनमें ईश्वरकी भक्ति के प्रभावसे उत्तम गुण स्वत:

रहित हैं, जिनकी बृद्धि स्थिर है और जो परमात्माके ज्ञानमें ही नित्य स्थित हैं—ऐसे भक्तिसंयुक्त सद्गुणोंसे

सम्पन्न भगवानुके भक्त भगवानुको अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये हमें चाहिये कि अपने भाव और क्रियाओं को उत्तम-से-उत्तम बनायें। वास्तवमें भाव उत्तम होनेसे क्रिया

अपने-आप स्वाभाविक ही उत्तम होने लगती है, उसमें कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता और जो सर्वथा ईश्वरके

बोध-कथा-

दूध क्यों नहीं पीते हो?'

अत्यन्त अभाव होकर परम कल्याणकारक विवेक और वैराग्ययुक्त सद्गुण-सदाचार स्वतः ही आ जाते हैं।

किसी नगरमें एक गृहस्थके घर एक गाय पली

### संसारके सुखोंकी अनित्यता दुखी भी मत हो। वह तो दयाका पात्र है। जैसे

थी। एक दिन उस गायका बछड़ा बहुत उदास हो रहा था। वह समयपर माताके स्तनोंमें मुख लगाकर दूध पीनेमें भी उस दिन उत्साह नहीं दिखला रहा था। गायने अपने बच्चेकी यह दशा देखकर पूछा-

लिये शुभ हैं।'

'बेटा! आज तुम इतने उदास क्यों हो ? उत्साहपूर्वक

बछड़ा बोला—'माँ! तुम उस भेड़ेकी ओर तो देखो। वह काला-कलूटा है, मुझसे छोटा है और सुस्त भी है; किंतु अपने स्वामीका पुत्र उसे कितना

प्यार करता है। उसे वह रोटी खिलाता है, हरी-हरी घास देता है, मटरकी फलियाँ अपने हाथोंसे खिलाता है और उसे पुचकारता है। उस भेड़ेको स्वामीके पुत्रने घंटियाँ पहनायी हैं और उसके सींगोंमें प्रतिदिन तेल लगाता है। दूसरी ओर मुझ अभागेकी कोई पूछ ही

समयपर कोई मुझे पानीतक नहीं पिलाता। मुझमें ऐसा क्या दोष है ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ?'

ही आ जाते हैं। अत: हम लोगोंको उत्तम गुण और उत्तम

भावकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारसे ईश्वरकी शरण होकर

निष्काम प्रेम-भावसे ईश्वरकी अनन्य भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार करनेपर ईश्वरकी कृपासे प्रमाद, आलस्य,

भोगवासना, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थ संकल्पोंका

मरणासन्न रोगी जो कुछ चाहता है, उसे दिया जाता

है; वैसे ही यह भेड़ा भी मरणासन्न है। इसे मारनेके

लिये पुष्ट किया जा रहा है। हमारे सूखे तृण ही हमारे

वनसे चरकर लौटी, तब उसने देखा कि उसका

बछड़ा भयसे काँप रहा है। वह न दौड़ता है, न

बोलता है। दीवारसे सटा दुबका खड़ा है। पास

जानेपर भी उसने दुध पीनेका कोई प्रयत्न नहीं

किया। गायने उसे चाटते हुए पूछा—'बेटा! आज

पहले तो खूब सजाया गया, फूल-माला पहनायी गयी;

बछड़ा बोला—'माँ! मैंने देखा है कि उस भेड़ेको

कुछ दिन बीत गये। एक सन्ध्याको गौ जब

किंतु पीछे एक मनुष्यने उसका मस्तक काट दिया।

िभाग ९२

नहीं। मुझे पेटभर सूखी घास भी नहीं दी जाती।

संसार ऐसा है कि यहाँ बहुत सुख और बहुत सम्मान मिलना बड़े भयकी बात है। संसारके सुख और सम्मानके पीछे रोग, शोक, मृत्यु तथा पतन छिपे हैं।

गाय बोली—'बेटा! व्यर्थ दु:ख मत करो। यह

केवल एक बार चीत्कार कर सका बेचारा! उसने थोड़ी ही देर पैर पछाड़े। उसके शरीरके भी हत्यारोंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अब भी वहाँ आँगनमें भेड़ेका

तुझे क्या हो गया है।'

रक्त पड़ा है। मैं तो यह सब देखकर बहुत डर गया हूँ।' गायने बछड़ेको पुचकारा और वह बोली-'मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि संसारके सुख

और सम्मानसे सावधान रहना चाहिये। इनके पीछे ही खात्वोभाइमन छाडोटऔर इस्टोकरत्पास्त्र हस्त्रपाइ देखुकरावामा शोका मान्य एके प्रीत्र पिराप्त हो है। देव

जीवनकी प्रयोगशाला संख्या ३ ] जीवनकी प्रयोगशाला ( पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी० ) मनुष्यको अपना जीवन एक प्रयोगशाला मानना कि वह उन घटनाओं के प्रति अपना भाव कैसा रखे। अपने रुखके अनुसार ही मनुष्य किसी घटनासे मानसिक चाहिये। इसमें उसे अनेक प्रकारके अनुभव होते हैं। इन अनुभवोंका कुछ मौलिक सिद्धान्तोंतक पहुँचनेमें उपयोग क्लेश अथवा प्रसन्नता प्राप्त करता है और जो मनुष्य करना चाहिये। जो मनुष्य जीवनके अनुभवोंको तत्त्वदर्शनके घटनाओंके प्रति पूर्णत: साक्षिभाव रखता है, वह सभी लिये उपयोगमें नहीं लाता, वह बालबुद्धि है। संसारके प्रकारकी घटनाओंमें शान्तचित्त रहता है। अनुभव हमें कुछ स्थायी शिक्षा देते हैं। हमें उन कितने ही लोग अन्धे होकर धनके पीछे पड जाते अनुभवोंकी ओर दृष्टि न रखकर उस शिक्षाकी ओर हैं और कितने पद-लोलुपतामें अपनेको खो देते हैं। जब दृष्टि रखनी चाहिये। संसारके सभी पुरुष सुख और मनुष्य किसी प्रकारके व्यवसायमें लग जाता है, तब दु:खका अनुभव करते हैं। इस तरह वे सारा जीवन बिना उसमें आत्म-निरीक्षणकी शक्ति नहीं रहती। इस प्रकार किसी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त किये ही बिता देते हैं। वह अनेक मानसिक कष्ट भोगता रहता है और उनसे अर्थात् वे मृत्युपर्यन्त बालक-जैसे ही बने रहते हैं। मुक्त होनेमें असमर्थ रहता है। इस प्रकारका मनुष्य अपने कितने ही मनुष्य उस समय जीवनके अनुभवोंके तथ्यको मानसिक क्लेशोंका कारण अपनेमें न ढूँढ़कर बाह्य समझ पाते हैं, जब उनके जीवनका सार भाग निकल जगत्में ढूँढता है। वह अपने दोषोंको खोजकर उनका निवारण करनेके बदले दूसरोंमें दोष ढूँढ़ता है, अपने जाता है और वे उसका कुछ भी उपयोग नहीं कर पाते। जैसे जर्मनीके प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता शोपनहारने बताया है कि मानसिक दु:खोंके लिये दूसरेको जिम्मेदार बनाता है; मनुष्यके अनुभव जबतक ज्ञानके रूपमें परिणत होते हैं, किंतु इस प्रकार उसके दु:खोंका नाश न होकर दिन-पर-दिन वृद्धि ही होती है। आधुनिक मनोविज्ञानने तबतक जीवनका सार भाग निकल जाता है। (When मनुष्योंकी इस प्रकारकी मनोवृत्तिका भलीभाँति अध्ययन experience ripens to wisdom, the rind of life is किया है। इस प्रवृत्तिको आरोप (इनट्रोजेक्शन)-की gone.) अतएव जो व्यक्ति वृद्धावस्थाके पूर्व ही ज्ञानोन्मुख हो गया है, वह धन्य है। प्रवृत्ति कहा है। जब हमारा मन अधिक विक्षिप्त हो, हमें उस जब मनुष्य अपने किसी प्रकारके अनुभवोंसे किसी सिद्धान्तपर पहुँचे तो उसे संसारके लाभके लिये सबके समय बाह्य जगतुकी चिन्ता छोड देनी चाहिये और अपने समक्ष रखना चाहिये। जिस मनुष्यकी यह बुद्धि है कि ऊपर ही विचार करना चाहिये। संसारकी कोई भी मेरे कष्टोंसे दूसरोंका लाभ हो, वह दु:खमें रहकर भी परिस्थिति स्थायी नहीं है। 'यह भी न रहेगा'—इस कदापि उद्विग्न न होगा। वास्तवमें यह जीवनका प्रथम विचारका अभ्यास करना उचित है। जब प्रत्येक और मौलिक सत्य है कि कोई भी व्यक्ति, जो अपने ही परिस्थिति परिवर्तनशील है, तब उद्विग्न होना मूर्खता है। सुखकी चिन्ता करता है, कभी सुखी नहीं रह सकता। मनुष्य उद्विग्नतासे अपनी हानि ही करता है, उसे लाभ जैसा एक अंग्रेज लेखकने कहा है कि सच्चा सुख कुछ नहीं होता। हालकी ही बात है कि लेखकका मन किसी दूसरोंको सुखी बनानेसे ही प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्यको अपने जीवनकी घटनाओंके प्रति सदा साक्षि-प्रकारकी घटनाओंसे क्षुब्ध हो गया। इस प्रकारकी भाव रखना चाहिये। घटनाओंका किसी निश्चित प्रकार स्थिति कुछ कालतक रही। इस स्थितिमें न तो नींद ही घटित होना मनुष्यके हाथमें नहीं है और जो मनुष्य बाह्य ठीकसे आती और न स्वप्न ही अच्छे आते। इन्हीं दिनों घटनाओंपर अपने सुखको निर्भर कर देता है, वह सदा अपने एक मित्रसे, जो बौद्ध भिक्षु हैं, मिलनेका संयोग ही दुखी रहता है। मनुष्यके हाथमें केवल इतना ही है हुआ। उनसे बौद्ध-धर्ममें प्रशंसित मैत्री-भावनापर बात

भाग ९२

परिस्थितियाँ पीछे सरल हो जाती हैं। दु:ख देनेवाली

घटनाएँ पीछे सुखका कारण बन जाती हैं। जो मनुष्य

अपने जीवनका लक्ष्य परोपकार ही बना चुका है, उसे

कौन परिस्थिति लक्ष्यभ्रष्ट कर सकती है? यदि कठिन

परिस्थितिसे उसे लडना पडता है तो उससे संसारका

कल्याण ही होता है। उसकी उन परिस्थितियोंपर विजय

देखकर दूसरे लोगोंको अपने सामने आनेवाली परिस्थितियोंसे

लड़नेमें प्रोत्साहन मिलता है। इसी प्रकार बड़े लोगोंकी

जीवनी दूसरोंके लिये शिक्षाका साधन बन जाती है।

जीवनको एक प्रयोगशाला मानना चाहिये। इसके बाह्य

लाभ या हानिमें मनको न फँसाकर उससे ज्ञान प्राप्त

करना चाहिये और उस ज्ञानका संसारके लोगोंमें वितरण

करना चाहिये। इसी तरह हम सुखी रह सकते हैं।

जगत्का स्वरूप ———

एक बड़ा सुन्दर मकान है। उसके नीचे अनाजकी दूकान है। दूकानके सामने अनाजकी ढेरी लगी है। एक बकरा आया,

श्रीनारदजी तथा श्रीअंगिराजी अपनी राह जा रहे थे। बकरेकी उपर्युक्त घटना देखकर नारदजीको हँसी आ गयी।

उसने ढेरीपर मुँह मारा। दूकानका मालिक एक तरुण धनी दूकानपर बैठा था। उसके हाथमें नुकीली छड़ी थी। उसने बकरेके

अंगिराजीने इस हँसीका रहस्य पूछा। तब नारदजीने बताया कि यह अनाजकी दुकान पहले बहुत छोटी थी। इसके मालिकने इसी दूकानसे अपने व्यापारकी प्रतिष्ठा की। वह अन्तमें करोड़पति हो गया। उसीने यह इतनी बड़ी इमारत बनवायी। वह बहुत बड़े-बड़े व्यापार करने लगा; परंतु अनाजकी बुनियादी दूकानको अपने रहनेके मकानके नीचे ही रखा; क्योंकि इसी दूकानसे उसकी क्रमशः उन्नति हुई थी। मालिक मर गया। उसका बेटा उत्तराधिकारी हुआ। वही तरुण दूकानपर बैठा है, जिसने बकरेको छड़ीसे मारकर भगाया है। यह इस दूकानपर रोज घंटेभर आकर बैठता है। काम-काज तो नौकर करते हैं। मुझे हँसी इस बातपर आ गयी कि दुकानका वह मालिक—इस तरुणका पिता ही बकरेकी योनिमें पैदा हुआ है। यही एक दिन इस दूकानका, मकानका और सारे कारोबारका मालिक था; पर आज एक मुट्टी अनाजपर भी उसका अधिकार नहीं है। अनाजकी

ओर मुँह करते ही मार पड़ती है और जिस पुत्रको बड़े प्यारसे पाला-पोसा, वही मारता है। यही है जगत्का स्वरूप।

हुई। उन्होंने बातों-ही-बातोंमें कहा कि उनके एक जिस समय हममें कोई दोष आ जाता है, उस दोषके

परिचित व्यक्तिको सोनेपर बहुत बुरे स्वप्न आया करते परिणामोंसे हमें कोई बचा नहीं सकता; और यदि हममें

थे। वे उन स्वप्नोंसे इतने तंग आ गये थे कि वे सोनेसे सद्गुण हैं तो हमारी कीमत एक जगह नहीं, तो दूसरी

ही डरने लगे। इन महाशयको मैत्री-भावनाका अभ्यास जगह अवश्य होगी। कहीं-न-कहीं हमारी मौलिकता

करनेको कहा गया। इस अभ्यासके करते ही उनके सब अवश्य पहचानी जायगी। मनुष्योंको दु:खोंसे भागना न

बुरे स्वप्न नष्ट हो गये और वे सुखकी नींद सोने लगे। चाहिये, उनका भोग करना चाहिये। कठिन परिस्थितियोंसे

लेखकको जिस समय उपर्युक्त सारी बातें मालूम भागना उचित नहीं, उन्हें भोगना ही उचित है। कठिन

हुईं, उसका चित्त शान्त हो गया। मैत्री-भावनाका एक

विशेष गुण यह है कि जबतक मनुष्य उस भावनासे

भावित रहता है, तबतक कोई मनुष्य उसे किसी प्रकारकी

क्षिति नहीं पहुँचा सकता। सब लोग उसके हितचिन्तक

बन जाते हैं और जो उसे हानि पहुँचाना चाहते हैं, उन्हें

हानि पहुँचानेका अवसर ही नहीं मिलता। इस प्रकारका

विचार जिस समय मनमें आया, एक भारी निर्भीकताका

अनुभव हुआ। विचारोंमें इस समय एक विशेष परिवर्तन

हो गया और परिस्थितियोंके प्रति रुख ही बदल गया।

संसारमें परमात्मा अर्थात् अपने आपके सिवा कोई

उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, तब उसका सारा जीवन

आनन्दमय हो जाता है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है।

सिरपर जोरसे छड़ी मार दी। बकरा में-में करता हुआ भागा।

जब मनुष्य यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि

दैवी विपत्तियाँ और उनसे बचनेका उपाय संख्या ३ ] दैवी विपत्तियाँ और उनसे बचनेका उपाय ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) देशमें और विश्वमें जो दैवी संकट और अशान्ति अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चल देता है। तथा दु:ख-दैन्य दिखलायी पड़ रहा है, वह सब हम यही तो संसारका स्वरूप है। इसमें उतराव-चढाव होता ही रहता है, प्रतिक्षण परिवर्तन, रूपान्तर, मरण और मनुष्योंके ही दुष्कर्मींका परिणाम है। एक बात और है, भगवत्कृपाका प्रकाश विविध रूपोंमें हुआ करता है, सुजन हो रहा है। इस सारी लीलामें वस्तृत: एक कभी वह बड़े सौम्य स्वरूपमें अपने दर्शन देती है तो लीलामय ही खेलता है; वह विधाता ही विधानका स्वाँग कभी बहुत ही भीषण रूपमें। जो उसे पहचानता है, वह धारण करता है। उसकी कृपा उससे अभिन्न है। हम उस भीषण मूर्तिके अन्दर भी उसकी त्रितापका नाश उसे पहचानते नहीं, यही हमारा मोह है। भक्त और ज्ञानी उसे पहचानते हैं, इसीलिये वे सदा सुखी रहते हैं, करनेवाली शान्ति-सुधामयी छविको देख पाता है। वह सभी अवस्थाओंमें भगवान्की कृपाका अनुभव करता महान्-से-महान् दारुण दु:ख भी उनको उस सुखमयी

उस भीषण मूर्तिके अन्दर भी उसकी त्रितापका नाश करनेवाली शान्ति-सुधामयी छिवको देख पाता है। वह सभी अवस्थाओंमें भगवान्की कृपाका अनुभव करता है। प्रत्येक आघातमें वह अपने एकमात्र प्रियतमका कोमल करस्पर्श पाकर पुलिकत हो उठता है और अपनेको परम सौभाग्यवान् और सुखी समझता है, परंतु जो नहीं पहचानते, वे रोते और दुखी होते हैं, फिर भी वे विपत्तिमें सम्पत्ति पाते हैं, दु:खमें भगवान्को कहीं अधिक सच्चे हृदयसे पुकारते हैं। संसारमें कुछ भी अनियमित नहीं होता। सभी कुछ

अधिक सच्चे हृदयसे पुकारते हैं।

संसारमें कुछ भी अनियमित नहीं होता। सभी कुछ सत्य, न्याय और दयासे सनी हुई भागवती शिक्तके नियमाधीन होता है, जो जीवोंके कर्मवश विविध भाँतिसे उनके शरीरोंका सृजन, पालन और संहार करती हुई उन्हें सतत कल्याणके मार्गपर अग्रसर करना चाहती है और करती रहती है। जैसे सृजन और पालनका कार्य सर्वत्र नियमित चल रहा है, उसी प्रकार संहारका भी चल रहा है, परंतु किसी अज्ञात नियमके अनुसार जब एक ही जगह, एक ही समयमें अधिक संहार होने लगता है, तब हम उसे कोई असाधारण घटना समझकर सिहर उठते हैं और समझते हैं मानो सर्वनाश हो गया, परंतु ऐसी बात नहीं है। जब बार-बार बिजली कोंधती है, बादल गरजते हैं, आँधी आती है और साथ ही मूसलाधार वर्षा होने लगती है, तब भीगा हुआ राहका मुसाफिर जाड़ेसे

कॉंपता हुआ सोचता है कि न मालूम यह प्रलय-वृष्टि

बन्द होगी या नहीं; परंतु थोड़ी ही देरमें बादल हट जाते

हैं, आकाश निर्मल हो जाता है, सूर्यकी किरणें सब ओर

अपना प्रकाश फैला देती हैं और पथिक सुखी होकर

लिये तन-मन-धनसे प्रयास करते हैं। वस्तुतः ज्ञानी और भक्त ही सबका दुःख दूर करना चाहते हैं; क्योंकि उनके अन्तःकरणका स्वभाव ही 'सर्व-भूतोंके हितमें रत' रहना और सबके प्रति द्वेषरहित होकर सबके अकृत्रिम मित्र और दयालु होना है। यही है—'सर्वभूतहिते रताः' और—'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च' की स्थिति।

जनका हृदय दुखियोंके दुःखको देखकर द्रवित नहीं होता, जिनको पीडितोंकी करुण-पुकार पीडित

स्थितिसे विचलित नहीं कर सकता—

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

अनुसार सब पात्रोंको अभिनय करना पड़ता है और

करना चाहिये भी। इसीसे ज्ञानी और भक्तगण भी

दुखियोंके दु:खको देखकर रोते हैं और उनके दु:खनाशके

तथापि जहाँपर जैसी लीला होती है, उसीके

दूर रहा, मनुष्यत्वतक पहुँचना भी अभी नहीं हो सका है। जो लोग पापका फल बतलाकर किसी दुखी जीवसे उदासीन रहते हैं, जिनको अपने धन और पदके अभिमानमें दुखियोंके दु:खसे द्रवित होनेका अवकाश ही नहीं मिलता, वे मनुष्य अभागे हैं और उनके द्वारा प्राय: पापका ही संचय होता है। अतएव

सबको यथासाध्य दुखी प्राणियोंकी तन-मन-धनसे सेवा करनेके लिये सदा तैयार रहना चाहिये। जिसकी जैसी

नहीं करती, उन मनुष्योंका ज्ञानी और भक्त बनना तो

शक्ति है, वह अपनी शक्तिके अनुसार ही सेवा करे। कारण हैं- 'व्यष्टि विश्वके कर्म।' महर्षियोंने कहा है कि 'जब देश, नगर और ग्रामोंके शासक तथा सेवा करके कभी अभिमान न करे और न यह समझे कि मैंने जिनकी सेवा की है, उनपर कोई कृपा की उनकी देखा-देखी प्रजाजन अधर्ममें रत हो जाते हैं; है, वे मुझसे नीचे हैं, मैंने उनका उपकार किया है, काम, क्रोध, लोभ और अभिमानके वश होकर असत्य, उनको मेरा कृतज्ञ होना चाहिये या अहसान मानना हिंसा, चोरी, व्यभिचार, शिष्टोंका अपमान और शास्त्रकी अवहेलना करने लगते हैं, तब देवता उनकी रक्षा न चाहिये: बल्कि यह समझे कि 'सेवाका सौभाग्य और बल प्रदान करके भगवान्ने मुझपर बड़ी कृपा करके उन्हें त्याग देते हैं। इसीसे ठीक समयपर वर्षा की, मेरे द्वारा किसीको कुछ सुख मिला है; इसमें नहीं होती, होती है तो कहीं अनावृष्टि और कहीं उनका भाग्य ही कारण है; उसीके लिये वह वस्तु अतिवृष्टि। वायु ठीक नहीं बहती। भूमि विकारयुक्त आयी है और भगवानुने मेरे द्वारा उसे वह चीज हो जाती है। जल सूख जाता है। ओषधियाँ अपना स्वभाव छोड़ देती हैं। लोभ और क्रोधकी वृद्धिके दिलवायी है; मेरा अपना कुछ भी नहीं है; मैं तो निमित्तमात्र हुँ। मेरे अभिमान करनेका कोई भी कारण कारण परस्पर भयानक युद्ध छिड़ जाते हैं। लोगोंकी नहीं है।' आजीविका नष्ट हो जाती है। भूकम्प, वज्रपात और बात भी यही है। हमारे पास विद्या, बुद्धि, तन, जलप्रलय आरम्भ हो जाते हैं। धर्मविहीन मनुष्य धर्मभ्रष्ट होकर गुरु, वृद्ध, सिद्ध, ऋषि और पूज्योंका मन, धन, जो कुछ है, वह सब भगवान्की धरोहर है, उनकी चीज है। उनको जहाँ जिस वस्तुकी अपमान करके अहित-साधन करते हैं और अन्तमें उन गुरुओंके अभिशापसे भस्म हो जाते हैं।' सच आवश्यकता हो, वहाँ उस वस्तुको आदरपूर्वक प्रसन्न मनसे उनके समर्पण कर देना ही हमारा धर्म है। पृछिये तो आजकल यही हो रहा है। ऐसे संकटसे जहाँ अकाल है, वहाँ वे अन्न माँगते हैं; जहाँ सुखा बचनेके लिये शास्त्रोंमें जो उपाय बतलाये गये हैं, है, वहाँ जल चाहते हैं; जहाँ बाढ़में सब कुछ बह उनका साररूप निम्नलिखित दस बातें हैं— गया, वहाँ वे अन्न-वस्त्र और आश्रय चाहते हैं। १-सत्यका पालन। ऐसी अवस्थामें हमारे पास उनका जो कुछ भी हो, २-दुखी प्राणियोंपर दया। तुरंत देकर उनकी प्रसन्नता प्राप्त करनी चाहिये। उन्हींकी ३-तन, मन, धनसे सात्त्विक दान। चीजसे उनकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार जो ४-देवताओंकी यथाविधि पुजा। भगवान्की पूजाके भावसे दुखी जीवोंकी सेवा करता ५-सदाचरण। है, उसे मुनिजनदुर्लभ साक्षात् भगवान्की या भगवान्के ६-ब्रह्मचर्यपालन। प्रेमकी प्राप्ति होती है और बुद्धिमानोंको इसी भावसे ७-शास्त्र और जितात्मा महर्षियोंकी आज्ञाका सेवा करनी चाहिये। जो अपनी क्रियाका ऊँचा-से-पालन। ऊँचा फल प्राप्त कर सके, वही बुद्धिमान् है। ८- धर्मात्मा और सात्त्विक पुरुषोंका संग। ९- गो-सेवा, गायोंके लिये गोचरभूमिकी व्यवस्था यहाँपर एक प्रश्न होता है कि तब क्या संसारमें दैवी संकटोंका आना किसी प्रकार रुक नहीं सकता? करना। १०- भगवान्के नामरूपी मन्त्रोंके द्वारा आत्मरक्षा। इसका उत्तर यह है कि जबतक संसार है, तबतक इनका सर्वथा नष्ट होना तो असम्भव है, परंतु ये ११- सबकी भलाईकी भावना करना। कम अवश्य हो सकते हैं। जिस कालमें दैवी संकट इन बातोंके पालनसे विश्वसंकट टलेगा और सर्वत्र ਕਸ਼ੀਜ਼ਰੀਹੈ। ਫ਼ੈੱਜ ਰੁਸ਼ੀਕਰੇ ਸ਼ਵਾਬ੍ਰਾਪ ਕੁਸ਼ਜ਼ੀਨ ਫ਼ੈਂ//ਕੈਂਡੈਂਟ. ਰੁਸ਼੍ਰੇਕੇ ਜ਼ਰੂਸਜ਼ਿੰਗ ਪ੍ਰਕਿਸ਼ਰ ਦੀ ਸਮਾਜ਼ਰੀ ਹੈ VE BY Avinash/Sha

भाग ९२

संख्या ३ ] आनन्द-स्वरूप आनन्द-स्वरूप ( संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल ) यह सम्पूर्ण संसार मुझे इतना मीठा क्यों लगता है ? ही प्रकाशमात्र है। सूर्य भी उस सूर्यके ही प्रकाशसे दीखता संसारके ये सब पदार्थ, संसारके सभी प्राणी मेरे हृदयमें है। सुतरां सभी सूर्य हैं। इसलिये हम कोई भी अलग आनन्दका इतना उद्रेक क्यों कर रहे हैं ? किसलिये बीच-नहीं हैं, सबके साथ एक अखण्ड-योगसे युक्त हैं। प्रत्येक बीचमें इन सबको अपने हृदय-मन्दिरमें विराजितकर घड़ेमें जो अलग-अलग सूर्य दीखते हैं, सो उसी एक रखनेकी इच्छा होती है ? क्यों इनको देखते ही समय-सूर्यके प्रतिबिम्ब हैं। अनेक देखकर भ्रम होता है, परंतु समयपर ऐसा मालूम होता है कि ये सब मेरे अपने हैं, वास्तवमें वे सभी अनन्त प्रतिबिम्ब उस एक ही सूर्यके अत्यन्त आदरणीय हैं! किसलिये इनकी चर्चा मेरे कानोंमें हैं! अँधेरेमें मुँह पहचाना नहीं जाता, अपने-परायेका निश्चय सुधा-सिंचन करती है? क्यों इनके स्पर्शसे ही समस्त नहीं होता। अज्ञानान्धकारसे हमारी भी वही दशा हो शरीर पुलिकत हो उठता है? वास्तवमें इस जगत्का गयी है। परंतु आज इस विकसित हुए आत्माके प्रकाशसे कोई भी प्राणी, कोई भी वस्तु मेरे प्राणोंसे दूर नहीं है— किसीको पहचाननेमें कोई कष्ट नहीं होता। आज इस मुझसे अलग नहीं है। 'मैं' जो कुछ हूँ, ये भी ठीक वही चेतनके प्रकाशसे जगत्के सारे पदार्थ आनन्द-रसमें मतवाले हैं। मैं जब विजातीयभावसे मृद्बुद्धि हो जाता हूँ, तभी हुए डगमगा रहे हैं-मालूम होता है सबमें आनन्द भरा गोलमाल होती है। अन्यथा 'मैं' जब अपनेको सत्यरूपमें है। इसीलिये जिसकी ओर दृष्टि जाती है, उसीमेंसे देखता हूँ, तब तो किसीको भी अपनेसे पृथक् नहीं देख चिदानन्दमय आत्माका स्वरूप फूट निकलता है। कैसा पाता। तो फिर जो 'यह' 'वह' 'अपना' 'पराया' आदि सुन्दर है! कैसा अनूप है! जन्ममें जैसी सुन्दरता है, मृत्युमें भिन्न-भिन्न भाव देखे जाते हैं, वे क्या कुछ भी नहीं हैं? भी वैसी ही सुन्दरता है। मुखकी हँसीमें उसका जैसा अवश्य ही इन सबको 'कुछ नहीं है' कहकर उडा देनेकी मनोहर सौन्दर्य है, दु:खकी अश्रुधारामें भी उसकी वही ताकत नहीं है, परंतु ये सब वहींतक 'कुछ' हैं, जबतक अनोखी रूपमाधुरी है। अतएव किसीको देखें या न देखें, हम इन्हें बाहरकी वस्तु समझते हैं—आत्मासे पृथक् मानते पहचानें या न पहचानें, हैं हम सभी एक; सभी हैं। जब 'आत्मदृष्टि' खो बैठते हैं, तभी यह अनैक्यभाव अन्तरात्माओंका मिलनक्षेत्र है, एक अखण्ड अद्वितीय स्पष्ट होता है। तभी देश-देशमें, नदी-नदीमें, पर्वत-पर्वतमें, परमात्मा। जो तरंगें तटपर आघात कर रही हैं, वह क्या ऊँचे-नीचेमें, स्त्री-पुरुषमें और देह-देहीमें अन्तर मालूम महासमुद्रसे पृथक् हैं? प्रत्यक् और परम वह एक ही होता है, और यह सबका अन्तर ही हमें गोरखधन्धेमें वस्तु है। इसीसे प्रत्येक प्राणमें मिलनकी इतनी आकांक्षा डाल देता है। परंतु हम केवल हाड़-मांसके पिण्डमात्र है। सब प्राण उसी एक महाप्राण समुद्रके तरंगोच्छ्वास नहीं हैं, हम तो चेतन हैं, और वह चेतन सब समय सर्वत्र हैं। इसीसे हम सबके साथ समान भावसे सुख-दु:ख अखण्डमण्डलाकारसे व्याप्त है। एक ही सूर्य कितनी दूर और संयोग-वियोगका अनुभव किया करते हैं। इसीसे दीखता है परंतु उसीके प्रकाशसे त्रैलोक्य प्रकाशित है। संकुचित 'अहं ' ज्ञान नष्ट होने लगता है। फिर सर्वत्र ही हममें कोई कहीं भी क्यों न रहे, सूर्य हम सभीके घरकी उसका स्पर्श पाकर शरीर रोमांचित हो उठता है, प्राण वस्तु है। उसकी रश्मियाँ हमारे घर और आँगनमें, शरीरमें प्रफुल्लित हो उठते हैं। हे मेरे श्यामसुन्दर! हे मेरे हृदय-और मनमें बिना विश्राम प्रवेश कर रही हैं, उन्हें कोई सखा! हे जीवके सर्वस्व धन! आज यह क्या देख रहा रोक नहीं सकता। इसके सिवा जो कुछ भी दृश्य पदार्थ हूँ ? आज यह करोड़ों विभिन्न वस्तुएँ, करोड़ों नर-नारी देखे जाते हैं, वे सभी सूर्यके प्रकाशमें देखे जाते हैं और सभी मानो एक ही प्रतीत हो रहे हैं! इनमें कोई भी दूसरा उनका जो रूप प्रकाशित हो रहा है, वह भी उस सूर्यका नहीं है, कोई भी मेरी आत्मासे भिन्न नहीं है। तुमने अपने

निरवयव अरूपके रूपसे यह तत्त्व कितनी सुन्दरतासे मुझे प्राणोंके अन्दर मानो कोई गा रहा है—

भाग ९२

कितने तुम अनुपम अति सुन्दर सकल विश्वमें हो सारे।

तुम अनन्त अमृतमय मधुमय जगके जीवन-धन प्यारे॥

तुम्हीं विश्वमय, सभी विश्व है एक तुम्हींसे सना हुआ।

एक एक अणु, अखिल विश्वका तुम्हरे अणुसे बना हुआ॥

इसीसे शैल-सलिल और अनल-अनिलमें उसके आनन्दका धन्य है तुमको और धन्य हूँ मैं! धन्य तुम मेरे प्रभु, मेरे जीवननाथ; और धन्य हूँ मैं तुम्हारा सेवक, तुम्हारी बाजार लग रहा है। 'मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो, मधुरं मधुरं मधुरं कृपाका भिखारी! धन्य हैं हम दोनों एक-दूसरेके

अभिन्न सखा!

#### भक्ति—अर्थ एवं स्वरूप ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

विश्वास-पथके साधकोंके जीवनमें ईश्वर-परम सत्ताकी और उसके साकार रूपोंकी भक्तिकी चर्चा होती

समझा दिया। कैसा सुन्दर है! कितना मधुर है! हम

सभी उस अखण्ड अद्वितीय चेतनके साथ योगयुक्त होकर

एक हो रहे हैं। इसीसे यह जगत् इतना सुन्दर है। इसीसे

इस आकाश और समुद्रमें इतना आनन्द छा रहा है।

मधुरम्।'

है। प्राय: सुनते हैं कि अमुक बहुत बड़े भक्त थे या हैं—अमुकने बहुत भक्ति की या कर रहे हैं। एक भ्रम यह भी होता है कि क्या ईश्वरकी विभिन्न नामधारी साकार प्रतिमाओंकी विधिपूर्वक पूजाको ही भक्ति कहते

क्रिया ही रही या कोई अपनी कामना लेकर की जा रही है तब तो जिसकी पूजा कर रहे हैं, वे साध्य न होकर कामनापूर्तिहेतु साधन हो गये। इस प्रकारकी पूजा न तो पूजा हुई और न ही भिक्त।

और समझते हैं ? अमुक बहुत बड़े भक्त हैं, रोज बैठकर तीन घण्टे पूजा करते हैं आदि, परंतु यह यदि मात्र

वास्तवमें भक्ति है क्या ? यह एक बहुत बृहद् और गूढ़ विषय है। 'भक्ति' का अर्थ और स्वरूपकी व्याख्या करना हमारे जैसे लोगोंके लिये सम्भव नहीं है। इसलिये धार्मिक ग्रन्थों और सन्तोंकी शरणमें जाकर अपनी

जानकारी औरोंके हितार्थ और अपनी अल्प बुद्धिकी पकड़में आ सके, ऐसी सरल चर्चा संकलित है।

गोस्वामी तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसके 'अरण्यकाण्ड'में प्रभु श्रीराम और परमभक्त शबरीजीके बीच संवादमें श्रीरामद्वारा शबरीजीको सुनायी गयी नवधा-भक्ति नीचे प्रस्तुत है-🟚 पहली भक्ति है—सन्तोंका सत्संग।

🛊 दुसरी भक्ति है—मेरे (श्रीराम) कथाप्रसंगमें प्रेम।

🔹 तीसरी भक्ति है—अभिमानरहित होकर गुरुके चरण-कमलोंकी सेवा करना।

चौथी भक्ति है—कपट छोड़कर मेरे गुण-समूहोंका गान।

🔅 पाँचवीं भक्ति है—मेरे (राम) मन्त्रका जप और मुझमें दृढ़ विश्वास।

🔅 छठी भक्ति है—इन्द्रियोंका निग्रह, शील, बहुत कार्योंसे वैराग्य और निरन्तर सन्त-पुरुषोंके धर्म, आचरणमें

लगे रहना।

🛊 सातवीं भक्ति है—जगत् भरको समभावसे मुझमें ओत-प्रोत (राममय) देखना और सन्तोंको मुझसे भी

अधिक करके मानना।

🛊 आठवीं भक्ति है—जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तोष करना और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना।

🔹 नवीं भक्ति है—सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें हर्ष और दैन्य (विषाद)-का न होना। [प्रस्तुति—साधन-सूत्र : श्रीहरीमोहनजी]

संसारमें रहनेकी विद्या संख्या ३ ] संसारमें रहनेकी विद्या साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) जो बातें सत्संग एवं धार्मिक पुस्तकोंसे हमें मिलती आपकी इच्छा हो तो उसको किसी और-को देनेमें और हैं, उनके अनुसार हमारा जीवन बन जाय तो बहुत शीघ्र दान-पुण्य करनेमें किंचिन्मात्र भी संकोच न करें। मुझे तत्त्व-साक्षात्कार या भगवत्प्रेम-रूप चरम लक्ष्य प्राप्त हो केवल सेवा और आज्ञापालनका अधिकार है, न कि जाय; क्योंकि नित्य-प्राप्तको ही प्राप्त करना है। आपसे कुछ लेनेका। आपने इतना अधिक दिया है कि प्रधान बात है—संसारमें रहना। इसकी भी एक संसारमें कोई उतना दे ही नहीं सकता, फिर मैं और क्या विद्या है, यह विद्या कठिन नहीं है। हमारा पक्का निश्चय चाहँ ?' होनेपर इस विद्याको बड़ी सुगमतासे समझा जा सकता है। इस प्रकार माता-पिताको यह मानना चाहिये कि विद्याके अधिकारी पुत्रको सुयोग्य बनाने, अच्छी शिक्षा देने तथा सब जिज्ञासायुक्त मनुष्यमात्र इस विद्याके अधिकारी हैं। प्रकारसे उसका हित करनेके लिये हम माता-पिता हैं। पापी हो या पुण्यात्मा, सुखी हो या दुखी, धनवान् हो स्वार्थ, अभिमान, आसक्ति और आशाका सर्वथा त्यागकर या निर्धन, विद्वान् हो या सर्वथा मूर्ख, पदपर नियुक्त हो जिस प्रकारसे पुत्रका जीवन सुखमय और लोक-परलोक अथवा पदहीन—सभी समान रूपसे इसके अधिकारी हैं। हितकर बने, हमें वही कार्य करना है। प्रतिफलमें पुत्रसे इस विद्याका जिज्ञासु शास्त्रनिषिद्ध आचरण तो करेगा कुछ भी चाहना नहीं है। बिना चाहे भी यदि पुत्र सुख ही नहीं; क्योंकि उसे संसारमें रहना सीखना और अपने पहुँचाये तो राजी नहीं होना चाहिये और विपरीत चले चरम लक्ष्यकी पूर्ति (भगवत्प्राप्ति) करना है। तो मन-ही-मन प्रसन्न होना चाहिये कि हमें इससे विद्याका स्वरूप दोहरा लाभ हुआ। प्रथम हमारे कर्तव्यका पालन हो गया हमें स्वार्थ और अभिमानका सर्वथा त्यागकर और पुत्रके विपरीत चलनेसे हमारे पापोंका नाश हुआ। दुसरोंकी प्रसन्नता और हितकी भावनासे कार्य करना अगर कहीं पुत्र आज्ञामें चलता तो हम (माता-पिता) चाहिये, अपने अभिमानको सुरक्षित रखने या स्वार्थभावको उसके ममता-आसक्तिमें फँस जाते। इसी युक्तिसे परिवारमें पुष्ट करनेके लिये नहीं। जैसे माता-पिताके प्रति सुपुत्रका सबको एक-दूसरेके प्रति व्यवहार करना चाहिये। जो कर्तव्य हो, वैसा ही आचरण हमको करना चाहिये। जिसके साथ आपका सम्बन्ध जिस रूपमें हुआ है, उसकी तन, मन, धनसे शास्त्राज्ञानुसार सेवा करना ही 'मैं माता-पिताकी सेवा और आज्ञा-पालनके लिये पुत्र हूँ, न कि माता-पितासे कुछ लेनेके लिये—यह भाव अपना पवित्र उद्देश्य है; क्योंकि इनके साथ सदा तो रहना चाहिये। सेवाके बदले लौकिक पदार्थ आदि कुछ रहना है नहीं, केवल सेवा करनेके लिये ही इनका साथ भी लेनेकी आशा नहीं रखनी चाहिये। माता-पिता हमसे हुआ है, अर्थात् इस परिवारमें जन्म हुआ है। लाड-प्यार न करके छोटे या बडे भाई-बहनोंसे प्यार भगवद्भावसे सेवा करें अथवा उन्हें कुछ भी दें, इसके लिये माता-पिताको साधकको यह भाव रखना चाहिये कि सबमें स्वतन्त्रता देनी चाहिये और अपने मनमें प्रसन्न होना परमात्मा परिपूर्ण है। अपने कर्तव्य-कर्मोंद्वारा मैं उसी चाहिये। सेवा करनेपर माता-पिता हमें कुछ भी न दें तो परमात्माकी सेवा कर रहा हूँ। श्रीमद्भगवद्गीतामें यह सोचकर प्रसन्न होना चाहिये कि 'हमारी सेवा श्रीभगवान्ने कहा है-सुरक्षित रह गयी। यदि माता-पिताके कुछ भी देनेपर ले यतः प्रवृत्तिर्भृतानां येन सर्विमिदं ततम्। लेता तो सेवाका मूल्य घट जाता।' एकान्तमें माता-स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ पितासे कह भी सकते हैं कि 'माँ और पिताजी! मुझसे (१८।४६) 'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है तो आप सेवा ले लें। आपके पास जो कुछ भी है, वह

और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥ अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको (रा०च०मा० ४।११।४) प्राप्त हो जाता है।' प्राप्त कर्तव्य-कर्मद्वारा भिन्न-भिन्न फिर इस समष्टि सृष्टिका एक अंश शरीर अपना रूपोंमें दीखनेवाले एक प्रभुका पूजन हो, यही मनुष्य-कैसे हो सकता है ? तत्त्वसे यह प्रकृतिका कार्यमात्र है। जीवनकी सिद्धि है। जिनके साथ जैसा सम्बन्ध (माता-जब सब शरीरोंकी रचना प्रकृतिद्वारा हुई है, तब एक पिता, भाई-भाई, पति-पत्नी, पिता-पुत्र आदिका) है, शरीरको अलग अपना मानकर अभिमान करना भूल ही उनकी सेवारूप पूजा उसी (ऊपरके स्वॉॅंग)-के अनुसार है। शरीर ही नहीं, (इससे सम्बद्ध) कुछ कुटुम्बी-पदार्थ, कुछ घर-जमीन और कुछ रुपयोंको अपना करनी चाहिये। किंतु यह जागर्ति बनी रहनी चाहिये कि 'इन्होंने मुझसे सेवा लेनेके लिये ही यह स्वरूप धारण मानना भी महान् बेईमानी ही है; क्योंकि सब कुछ मिला हुआ है, नहीं 'मिला' अपना होता नहीं। इनको सेव्यके किया है, वास्तवमें तो ये साक्षात् परमात्मा—मेरे इष्टदेव ही हैं।' सेवा अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रविहित एवं ही मानकर उनकी सेवामें लगा देना उचित है। हमें तो न्याययुक्त होनी चाहिये। अन्याययुक्त माँग हो तो दीनतायुक्त प्रत्युपकार अथवा कृतज्ञताकी आशा भी नहीं रखनी

वचनोंसे अपराधीके समान क्षमा माँग लेनी चाहिये कि 'यह मेरी सामर्थ्यसे बाहरकी बात है, आप क्षमा कर दें।' बेईमानीका त्याग संसारमें रहनेके लिये जो भी सामग्री धन, जमीन,

परिवार, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और प्राण इत्यादि हमें प्राप्त हुए हैं, ये सब संसारके या सेव्यके ही

प्राकृत पदार्थ हैं, अपने नहीं; क्योंकि शरीर भी संसारसे ही मिला है। इसी प्रकार योग्यता, विद्या, कला, कौशल और चतुराई यह सब भी संसारसे सीखी है।

अत: मात्र सामग्री संसारकी है। शास्त्रीय एवं तत्त्वदृष्टिसे देखा जाय तो सब कुछ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशादि पंचतत्त्वोंसे निर्मित है।

— मेरे कारण कोई झूठ क्यों बोले प्रेरक-प्रसंग-कलकत्तेके सुप्रसिद्ध सुधारक विद्वान् श्रीरामतनु

लाहिड़ी उन दिनों कृष्णनगर कालिजियट स्कूलके प्रधानाध्यापक थे। वे एक दिन कलकत्तेमें सड़ककी

पटरीसे जाते एक व्यक्तिकी ओर संकेत करके कहा—'उन सज्जनने मुझसे कुछ रुपये उधार लिये हैं।

एक पटरीसे कहीं जा रहे थे। श्रीअश्विनीकुमारजी

ही मुक्ति है।

जब वे मुझसे मिलते हैं, तभी कोई-न-कोई तिथि बताते हैं कि उस तिथिको रुपया दे देंगे। परंतु

चाहिये। क्या अपने हाथोंसे अपना मुख धोनेपर प्रत्युपकार

या कृतज्ञताकी माँग होती है? दुसरी बात, आशानुरूप फल मिल ही जाय, यह भी आवश्यक नहीं, तब फिर

सेवाके बदलेमें कुछ भी चाहना कहाँतक उचित है?

अतः सब सामग्री भी उस रचियता परमात्माकी ही है।

परमात्माद्वारा उदारतापूर्वक प्रदत्त सामग्रीपर अहंता, ममता

करके अधिकार जमाना बेईमानी है। वास्तवमें सामग्री

और आप स्वयं परमात्माके हैं, इसे ठीक ऐसा ही मान लें, फिर बन्धन नहीं होगा। इनको अपना और अपने

लिये मानना ही बन्धन है। इस बेईमानीका त्याग करते

भक्तिमार्गके अनुसार संसार परमात्माद्वारा रचित है,

(अर्थात् सर्वथा अनुचित ही है।)

भाग ९२

उनके पीछे चल रहे थे। अचानक लाहिड़ीबाब् सम्भवतः अपनी परिथितिसे वे विवश हैं। अपनी बात शीघ्रतासे दूसरी पटरीपर चले गये। अश्विनीकुमारजीने वे सत्य नहीं कर पाते। उन्हें देखकर मैं इधर चला नामेर्तिस्थान जेंडर करण्ड सम्बन्धान नाहिङ्गेनस्डरे. पुहुत्वी na नामेरे करण किसी हरे हुए हुए सेरानस्ड सङ्गेर ते

श्रीसूरदासजीका होली-वर्णन संख्या ३ ] श्रीसूरदासजीका होली-वर्णन (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) षट् ऋतुओंमें वसन्तको 'ऋतुराज' की उपाधि इसी प्रकार महाकवि भारवि, महाकवि माघ, प्राप्त है। वसन्तके कोमल करस्पर्शमात्रसे ही वसुन्धरा भोजदेव, पीयूषवर्षी जयदेव, पण्डितराज जगन्नाथ आदि मुदित हो जाती है। सर्वत्र आनन्द एवं मस्ती थिरकने संस्कृतके महाविद्वानोंद्वारा वर्णित वसन्त-वर्णन पढ्-लगती है। प्रकृति-नटी बन-ठनकर अत्यन्त लावण्यवतीके सुनकर मन मुग्ध हो जाता है। हिन्दी-साहित्यके रूपमें दर्शन देती है। वृक्ष अपने पुराने पत्तोंको छोड़कर कवियोंने भी इसके यशोगानमें अपनी विलक्षण प्रतिभाका नूतन एवं कोमल पत्ते धारण कर लेते हैं। सरोवरमें कमल भरपूर उपयोग किया है। संत कवि भी अपने आराध्यकी लीलाओंके स्मरणके मिससे वसन्तका पर्याप्त गुणगान एवं धरतीपर पलास खिल जाते हैं। आम्र-मंजरियोंकी मादक गन्ध दिक्-दिगन्तमें व्याप्त हो जाती है। मत्त करनेमें किसीसे पीछे नहीं रहे है। संत नन्ददासका वर्णन भ्रमरकुल मधुपानके लिये गुंजार करता हुआ विकसित देखिये-कलिकाओंकी ओर चल देता है। अमराइयोंमें कोयल लहकिन लागी बसंत-बहार सिख, त्यौं-त्यौं बनवारी लाग्यौ बहकिन। मधुर ध्वनिमें कूकने लगती है। वासन्ती पवन मदमत्तकी फूले पलास नख नाहर-कैसे, तैसौइ कानन लाग्यौ री महकनि॥ भाँति डोलता हुआ सर्वत्र उन्मद संदेश सुनाने लगता है। कोकिल, मोर, सुक, सारस, खंजन, भ्रमर देखि, अँखियाँ लगीं ललकिन।। सर्वत्र मदमस्तीका प्रभाव व्याप्त हो जाता है। वसन्तके श्रीगोविन्दस्वामी अनुपम वसन्तका कीर्तिगान इस प्रकार करते हैं-इस मोहक स्वरूपपर किस पुरुषका हृदय अर्पित नहीं हो जायगा। सरिता-सरोवरोंके निर्मल नीरमें अरुण, नीले एवं आयौ बसंत रितु अनूप कंत आम्र मौरे। उज्ज्वल विकसित कमलोंको देखकर, वनोंमें पुष्पोंसे लदी बोलत बन कोकिला मानों कुहू-कुहू रस ढोरे॥ लता-वल्लरियोंपर दृष्टि डालकर, आम्रमौरोंकी भीनी फूली बनराजि जाइ कुंद-कुसुम थोरे। सुगन्ध पाकर, भ्रमरोंकी गुंजार एवं कुंजोंकी ओरसे आती मधु-राते, मधु-माते मधुप फिरत हुई पंचमकी धुन सुनकर कौन नहीं छक जायगा, कौन हम-तुम मिलि देखें लाल निकुंज-भवन द्वारें। नहीं बिक जायगा? और इसी कारण संस्कृतके कवियोंने 'गोबिंद' प्रभु नंद-सुवन खेलत इक ठौरें॥ वसन्त-वर्णनमें अपनी लेखनीके अद्भुत कौशलका इन संतोंने वसन्तमें श्रीहरि-लीलाके कितने ही परिचय दिया है। यहाँ हम महाकवि कालिदासका एक सुललित पदोंकी रचना की है, जिनको पढ़ते ही मन मुग्ध श्लोक उद्धृत करते हैं। वसन्तका प्रभाव देखिये— एवं तन्मय हो जाता है। वे रचनाएँ हिन्दीसाहित्यकी अनमोल निधि तो हैं ही, भक्तोंकी प्राणप्रिय सम्पत्ति हैं। सपुष्पाः सलिलं सपद्मं द्रुमा: इन संत कवियोंमें भक्तप्रवर श्रीसूरदासजीका अत्यन्त स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः। आदरणीय स्थान है। हिन्दी कविकुलमें संत सूर 'सूर्य' सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः की उपाधिसे विभूषित हैं। इनके अनुठे पदोंके कितने ही सर्वं प्रियं चारुतरं वसन्ते॥ 'वसन्तमें सब कुछ सुहावना हो गया है। वृक्षोंमें संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीसूरदासजीका वसन्त-फूल खिल आये हैं, जलमें कमल खिल गये हैं, स्त्रियोंमें वर्णन देखिये— काम जग उठा है, पवन सुगन्धसे भर गया है, सन्ध्या कोकिल बोली, बन-बन फूले, मधुप गुँजारन लागे। सुहावनी हो उठी है और दिन लुभावने हो गये हैं।' सुनि भयौ भोर, रोर बंदिन कौ, मदन-महीपति जागे॥

भाग ९२ कल्याण रंगोत्सव-वर्णन भी अनुपम है। देखिये— ते दूने अंकुर द्रुम-पल्लव, जे पहिले दव-दागे। मानहुँ रति-पति रीझि जाचकिन, बरन-बरन दए बागे॥ पिय-प्यारी खेलैं जमुन-तीर। भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर॥ 'कानन कुसुमित हो गये। भ्रमर गुंजार करने लगे। घिस मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँग भीने अरगज वस्त्र-माल॥ कोकिल कूकने लगी। मदन-महीपति इन बन्दियोंका हरि सँग खेलति हैं सब फाग। कोलाहल सुनकर सबेरा हुआ जानकर जाग पड़े। उन इहिं मिस करतिं प्रगट गोपी, उर-अंतर कौ अनुराग॥ वृक्षोंमें, जिनके पल्लव पहले पीले होकर गिर पडे थे, सारी पहिरि सुरंग, किस कंचुकि, काजर दे-दे नैन। दूने नये पत्ते लग गये हैं, मानो रतिपतिने सन्तुष्ट होकर बनि बनि निकसि-निकसि भईं ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन॥ याचकोंको विविध रंगोंके वस्त्र दिये हों।' इस लघु ढफ बाँसुरी, रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल-मृदंग। निबन्धमें अधिक वर्णन उपस्थित करना सम्भव नहीं। अति आनंद मनोहर बानी, गावत, उठित तरंग॥ यहाँ केवल एक पद और उद्धत किया जाता है। एक कोध गोबिंद ग्बाल सब, एक कोध ब्रजनारि। वसन्तके सुन्दर वर्णनके साथ उपमाकी अद्भुत छटा इस छाँड़ि सकुच सब देतिं परस्पर, अपनी भाई गारि॥ पदमें देखते ही बनती है-मिलि दस-पाँच अलीं चलीं कृष्निह गहि लावतिं अचकाइ। देखत बन ब्रजनाथ आजु अति उपजत है अनुराग। भिर अरगजा अबीर कनक-घट देतिं सीस तें नाइ॥ मानहुँ मदन-बसंत मिले दोउ खेलत फूले फाग॥ छिरकतिं सखी कुमकुमा-केसरि, भुरकतिं बंदन-धूरि। सोभित है तनु साँझ समै घन आए हैं मनु पूरि॥ झाँझ झिली, निर्झर निसान-ढफ, भेरि भँवर-गुंजार। मानहुँ मदन मंडली रचि पुर-बीथिन बिपिन बिहार॥ गोकुलकी ग्वालिनें होलीके दिन किस प्रकार फाग खेलनेके लिये चलती हैं और रंगोत्सव-पर्वपर कितना द्रुम-गन मध्य पलास-मंजरी, उदित अगिनि की नाईं। आनन्द एवं कितनी मस्ती छायी है, इसके लिये महात्मा अपनें-अपनें भेरनि मानौ, होरी हरिष लगाईं॥ सूरके पद देखनेयोग्य हैं-केकी, कोक, कपोत और खग करत कुलाहल भारी। मानहुँ लै लै नाउँ परस्पर, देत-दिवावत गारी ॥ गोकुल सकल गुवालिनी, घर-घर खेलतिं फाग॥ कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजित, अति रस बिमल बढ़ी। मनोरा झूम करो॥ मनु कुल-बधू निलज भईं गृह-गृह गावतिं अटनि चढ़ी॥ तिनमैं राधा लाड़िली, जिनकौ अधिक सुहाग॥ मनोरा०॥ झुंडिन मिलि गावत चलीं, झूमत नंद-दुवार॥ मनोरा०॥ प्रफुलित लता जहाँ-जहँ देखत, तहाँ-तहाँ अलि जात। मानहुँ बिट सबहिनि अवलोकत, परसत गनिका-गात॥ आजु परब हँसि खेलिये, मिलि सँग नंद-कुमार॥मनोरा०॥ होली खेलनेके लिये नन्द-द्वारपर श्यामसुन्दरकी लीन्हे पुहुप-पराग पवन कर, क्रीड़त चहुँ दिसि धाइ। प्रतीक्षामें सजी गोपियोंके सम्बन्धमें श्रीसूरदासजी कहते रस अनरस संजोगिनि बिरहिनि, भरि छाँड्त मन भाइ॥ बहु बिधि सुमन अनेक रंग छबि उत्तम भाँति धरे। मन् रतिनाथ हाथ सौं सबहीं लै लै रंग भरे॥ राती-पीरी अँगिया पहिरें, नव तन झुमक सारी॥ और कहाँ लगि कहीं रूप निधि, बृंदा-बिपिन बिराज। मुख तमोर, नैननि भरि काजर, देहिं भावतीं गारी॥ 'सूरदास' प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे राज॥ रितु बसंत आगम रति-नायक, जोबन-भार भरीं। वसन्तका कितना सुन्दर एवं सरस वर्णन है। बार-देखन रूप मदनमोहन कौ, नंद दुवार खरीं॥ बार पढ़नेपर भी तृप्ति नहीं होती। इस प्रकार इनके रचे उधर यशोदानन्दन मदनमोहन होली खेलनेकी कितने ही अत्यन्त ललित पद प्राप्त हैं, जिन्हें पढ़-कैसी तैयारी करके निकले हैं, महाकवि सूरदासजीके ही सुनकर मन मुदित हुए बिना नहीं रहता। इनका शब्दोंमें सुनिये—

संख्या ३ ] श्रीसूरदासजीव कक्रकक्रकक्रकक्रकक्रकक्रकक्रकक्रकक्रक	हा होली-वर्णन इ.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स
निकसि कुँवर खेलन चले, रँग होरी।	डालेंगी।'
मोहन नंद-किसोर, लाल रँग होरी॥	रे भैया! तुम चौकस रहियो, जिनि कोउ होहु गहायौ।
कंचन माँट भराइ के, रँग होरी।	जो काहू कौ पकरि पाइहैं, करिहैं मन कौ भायौ॥
सोधैं भस्त्रो कमोर, लाल रँग होरी॥	तातें सावधान ह्वै रहियौ, मैं तुमकौं समुझायौ॥
झाँझ-ताल सुर-मंडले, रँग होरी।	श्रीकिशोरीजी भी कम चतुर नहीं थीं । उन्होंने भी अपनी
बाजत मधुर मृदंग, लाल रँग होरी॥	् एक सखीको बुलाकर उसे दाऊजीके वेषमें सजा दिया।
तिन मैं परम सुहावनी, रँग होरी।	राधा गोरी नवल किसोरी, इनहुँ मतो जु कीन्हो।
महुवरि, बाँसुरि, चंग, लाल रँग होरी॥	सिख इक बोलि लई अपनैं ढिग, भेष जु बल को कीन्हो॥
होलीके एक नहीं, सैकड़ों पद एक-से-एक सुन्दर	सखी बलरामके वेषमें श्रीकृष्णकी ओर गयी।
एवं प्रभावोत्पादक महाकविके रचे हुए हैं। उन्हें बार-	श्रीकृष्ण उससे मिलने चले। कोई भी गोपबालक
बार पढ़नेकी इच्छा होती है। कविवरेण्यने होली-वर्णनमें	सखीको पहचान नहीं सका। उसने श्यामसुन्दरको
प्रेमकी मंजुल मूर्ति गोपियों एवं आनन्दकन्द श्रीकृष्णकी	अपनी बातोंमें जरा-सा उलझाकर पीछेसे उन्हें पकड़
प्रेमलीलाओंका खूब सरस एवं हृदयग्राही वर्णन किया	लिया। फिर क्या था, श्यामसुन्दरके पकड़में आते ही
है। यहाँ हम ऐसी मधुर लीलाका उल्लेख करते हैं—	सारी गोपियाँ वहाँ एकत्र हो गयीं। वे कहने लगीं
कालिन्दी-कूलपर यशोदानन्दन श्रीकृष्ण कुंजोंमें	कि 'हम विधातासे यही याचना कर रही थीं कि
होली खेल रहे हैं। एक ओर तो श्रीकृष्ण अपने सखाओं	श्यामसुन्दरसे अपना दाँव कब पायेंगी। जब तुमने
गोप बालकोंके साथ हैं और दूसरी ओर वृषभानुकुमारी	हमलोगोंके वस्त्रोंकी चोरी की, तब हम आकुल होकर
श्रीराधा अपनी सिखयोंके साथ आयी हुई हैं। होलीकी	रह गयी थीं। अब हम तुम्हारे वस्त्र छीन लेंगी और
प्रतिद्वन्द्वितामें वे परस्पर स्नेहसिक्त गाली देते हैं और	तुम छटपटाओगे।' सूरदासजीके शब्दोंमें—
हाथोंमें स्वर्णकी पिचकारी लेकर एक-दूसरेपर केसर-	ताकौं मिलन चले उठि मोहन, काहुँ सखा न चीन्हौ।
मिश्रित रंग डालते हैं, अबीर-गुलाल उड़ाते हैं।	नैंसुक बात बलाइ साँवरै पाछे तैं गहि लीन्हौ॥
होरी खेलत जमुना के तट, कुंजनि तर बनवारी।	आईं सिमिटि सकल ब्रज-सुंदरि, मोहन पकरे जबहीं।
इत सिखयन कौ मंडल जोरें, श्रीवृषभानु-दुलारी॥	हम माँगत हीं यह बिधिना पै, दाँव पाइहैं कबहीं॥
होड़ा-होड़ी होत परस्पर, देत हैं आनँद-गारी।	तब तुम चीर हरे जु हमारे, हा-हा खाई सबहीं।
भरे गुलाल कुमकुमा केसर, कर कंचन-पिचकारी॥	अब हम बसन छीनि करि लैहैं, हा-हा करिहौ अबहीं॥
वहाँ वीणा, महुवर, किन्नरी, मुरचंग तथा बाँसुरी	एक सखी कहती है—'इनके मुखारविन्दके लिये
बज रही है। झाँझ, मृदंग और ढफके स्वरोंकी तरंगें उठ	मेरी आँखें भ्रमरी हैं। जरा इनका मुखारविन्द उठाओ।
रही हैं। गोप बालक एवं श्रीकिशोरीजीकी सिखयाँ सभी	मैं इन्हें देखकर अपनी तृषा शान्त कर लूँ।'
एक-दूसरेपर केसर और रंग छोड़ते हैं तथा स्वयं हँसते	एक सखी कहती है—'इनकी आँखोंमें अंजन एवं
और दूसरोंको भी हँसाते हैं।	माथेपर बेंदी लगा दें।' एक कहती है—'इन्हें नचाया
इसी समय चतुर श्रीकृष्णने अपने सखाओंको	जाय और हम सब ताल दें।'
बुलाकर कहा—'भाइयो, होलीके रंग एवं विनोदमें भी	एक सखी पीछसे आयी और उनके मयूरपिच्छपर
सजग रहना कोई गोपियोंके हाथ न आ जाय, अन्यथा	हाथ साफ कर दिया और एक सखीने अचानक आकर
यदि गोपियाँ किसीको पकड़ लेंगी तो मनमानी दुर्गति कर	उनका पीताम्बर छीन लिया।

आनन्दकन्दके दर्शनार्थ ऋषि-मुनि कठोर तप करते हैं एक सखी कहै बदन उठावहु, हमहूँ देखन पावैं। और ध्यानमें भी उनकी मनोहर मूर्तिके दर्शन नहीं कर श्रीमुख-कमल नैन मेरे मधुकर, तनकी तृषा बुझावैं॥ पाते, वे व्रजवनिताओंके सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं। एक सखी कहै आँखि आँजि के, माथें बेंदी लावैं। व्रजांगनाओं के सौभाग्यके लिये क्या कहा जाय? एक सखी कहै इनहि नचावहु, हम सब ताल बजावैं॥ एक सखी जु आइ पाछे तैं, मोर-पच्छ गहि लीन्यौ। जाके काज ध्यान धरि देख्यौ, ध्यानहु आवत नाहीं। एक सखी त्यौं आइ अचानक, पीताम्बर धरि छीन्यौ॥ अब देखे बनितनि आगें, ठाढ़े जोरें बाहीं॥ एक सखीने श्रीकृष्णकी आँखमें अंजन लगाकर विवशत: मुसकराकर श्रीकृष्णने कहा—'तुम सबके उनके मुखपर रंग पोत दिया। उसे किसी प्रकारका भय मनमें जो आये कहो, पर अब मेरा पीताम्बर दे दो। मैं नहीं था। होलीमें भय क्यों? अपने घर जाऊँ।' एक जु आँखि आँजि, मुख मांड्यो, ऊपर गुलचा दीन्यो। हँसि-हँसि कहत सु मोहन प्रीतम, मन-मानौ सुख कीजै। मानत कौन फाग में प्रभुता, मन भायौ सो कीन्यो॥ छाँड़ि देहु, गृह जाउँ आपनें, पीतांबर मोहि दीजै॥ गिरिधरलाल हाथ जोडकर खडे हैं और कहते हैं होलीमें कौन किसे रोके। इस मत्त-कालमें बडे-छोटेका भेद कहाँ ? संत श्रीकुम्भनदासजीने भी गाया है— 'हमें आज्ञा दो। तुम्हारी जो इच्छा हो, हमसे फग्आ ले लो। हम तैयार हैं। और उन्होंने अपने सखाओंको 'होरी कै है औसरु, जिनि कोऊ रिस मानै।' सिखयोंको इतनेसे ही सन्तोष नहीं हुआ। प्रेमोन्मत्त बुलाकर सबकी रुचिके अनुसार विविध प्रकारके वस्त्रोंको सिखयोंमें एक बोली, 'अब तुमको तुम्हारे दाऊ भैया पहननेके लिये दिया और खुब मस्ती एवं आनन्दसे आकर छुड़ा लें।' एक बोली, 'अपना एक सखा घरपर रंगोत्सव हुआ।' भेजकर यशोदा मैयाको बुला लो। वे आकर तुम्हें छुड़ा कर जोरें गिरिबरधर ठाढ़े, अग्या हम कौं दीजै। लें।' एकने कहा-'तुम्हें छूटनेकी अनेक विधियाँ विदित जो कछु इच्छा होइ तिहारी, सौ सब फगुआ लीजै॥ हैं, पर आज नहीं छूट सकोगे। हाँ, यदि तुम किशोरीजीसे तब गिरिबरधर सखा बुलाए, फगुआ बहुत मँगायौ। अनुनय-विनय करो तो वे छुड़ा सकती हैं।' जोइ-जोइ बसन जाहि मन मान्यो, सोइ-सोइ तिहिं पहिरायौ॥ श्रीसूरदासजी अपने प्राणधन नन्दनन्दन श्रीकृष्णपर एक कहै—बोलो बल भैया, तुमकौं आइ छुड़ावैं। अर्पित होकर प्रेमगद्गद वाणीसे कहते हैं— सखा एक पठवौ कोइ घर कौं, जसुमित कौं लै आवैं॥ जानत हो कल-बल के छूटें, सो निहं छूटन पावैं। राधा-मोहन जुग-जुग जीवौ, सब कोउ भलौ मनायौ। राधा जू सौं करौ बीनती, वै बलि तुमहिं छुड़ावैं॥ बंस नंद बाबा कौ, सूरदास जस गायौ॥ इसी बीच सिखयोंने दूरसे बलरामजीको आते देखा इस प्रकारकी अनेक मधुर लीलाओंका वर्णन और छलपूर्वक उन्हें भी पकडकर श्रीकृष्णके पास एक श्रीसुरदासजीने अपने पदोंमें किया है। श्रीकृष्णकी ओर खड़ा कर दिया। श्रीकिशोरीजीके संकेतसे सिखयोंने भुवनमोहिनी लीलाओंके ये पद भक्तोंके हृदयको तृप्त उनकी आँखोंमें भी अंजन लगाकर मुखपर रंग पोत दिया। करनेके लिये अमृततुल्य और साहित्यकी निधि हैं। यही कारण है कि शताब्दियों पूर्व रचित संत सुरदासजीके दूरिह तैं देख्यो बल आवत, सखी बहुत उठि धाईं। कल-बल-छल जैसैं-तैंसैं करि, उनहुँ कौं गहि ल्याईं॥ ये पद आजतक घर-घर आदर एवं प्रेमपूर्वक गाये जाते हैं और जबतक भारत-धरापर श्रीकृष्णप्रेमी भक्त किये आनि ठाढ़े इक ठौरहिं, बल-मोहन दोउ भाई। उनहूँ की आँखि आँजि मुख माँड्यो, राधा सैन बुझाई॥ एवं हिन्दी-साहित्य जीवित रहेगा, तबतक गाये जाते

Hinखातङ्ग्यांDiङ्ख्लेd डैंeिक्वानिस्फुडग्र/खड्टर्जुनुर्धात्वस्तावे | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

भाग ९२

मैं तुम्हारे अंग-संग हूँ संख्या ३ ] मैं तुम्हारे अंग-संग हूँ एक नई भोरके आगमनके साथ, आज जब तुम उठे, लौट आये। एक बार फिर मैंने अपनी आशाके दीप जलाये, तो मैंने तुम्हें देखा। सोचा कि तुम अपने दिनकी शुरुआत यह सोचकर कि अपने कार्योंको समाप्त करनेके बाद अब करनेसे पहले मेरा आशीर्वाद लेना जरूरी समझोगे। भले ही तो तुम मुझसे बात करना चाहोगे। पर यह क्या? तुम तो चुप रहोगे, पर मुझे प्रणाम जरूर करोगे। पर तुम तो पहननेके टी०वी० देखने बैठ गये। तुम उसमें कुछ देखना तो नहीं लिए सही कपड़े ढूँढ़नेमें व्यस्त थे और इधर-उधर भागकर चाहते थे, पर न जाने किस विवशतासे उसके सामने बैठे रहे कामपर जानेके लिये तैयार हो रहे थे। और चैनल बदलते रहे। मैं समझ चुका था, कि कोई बात तुम नाश्ता करने बैठे। मुझे लगा, अब तुम मुझसे भी तुम्हें अन्दर-ही-अन्दर खा रही है। तुम्हारे मनकी मंशाको दो निवाले खानेको कहोगे, पर तुम इतनी जल्दीमें थे कि यह मैंने तुम्हारी आँखोंमें पढ़ लिया था। मुझे लगा, कि अब तुम भूल ही गये कि तुम्हारे द्वारा प्यारसे खिलाया गया एक मुझसे राय लेनेके लिये मेरे पास आओगे। तुम्हे यह तो याद निवाला ही मेरी भूख मिटा सकता है। फिर भी, तुम्हें जी होगा कि हर मुश्किल घड़ीमें मैंने तुम्हारा साथ दिया है। पर भरकर खाता देख मैं अपनी भूख भी भूल गया। खानेके अब शायद तुम्हें मेरी सहायताकी जरूरत नहीं है। इसलिये पश्चात् तुम्हारे पास १५ मिनटका समय था। तुम खाली बैठे तुम अपने मनके तूफानको मनमें दबाये हुए, सोनेके लिये मन-ही-मन कुछ सोचते रहे। मैंने सोचा कि अब तुम मुझसे बिस्तरपर लेट गये। तुम कुछ सोचने लगे। तुम्हारी आँखोंमें न तो नींद थी, न ही चैन। तुम्हारी यह बेचैनी जब मुझसे देखी न बात करनेके लिये हिचिकचा रहे हो कि कहीं मैं तुमसे नाराज तो नहीं। नादान समझ मैंने तुम्हारी तरफ अपना पहला गयी, तो मैं तुम्हारी तरफ बढ़ा। अपना हाथ तुम्हारे सरपर कदम बढ़ाया ही था कि तुम अपने फोनकी तरफ भागे, रख, मन-ही-मन सोचा, कि अब तुम आँखें खोलोगे और अपने मित्रसे ताजी खबर लेनेके लिये। मेरी आशा एक बार यह देखोगे कि मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ। पर तुम तो सो चुके फिर टूट गयी, परंतु तुम्हें हँसता देख मैं भी मुसकरा दिया। थे और इसीके साथ मेरा इन्तजार अधूरा रह गया। तुम घरसे निकलने लगे। मेरा विश्वास था कि अब तो तुम लेकिन आज अगर मेरी आशाका दीप बुझ गया तो जानेसे पहले मुझे प्रणाम करना नहीं भूलोगे। पर मेरा विश्वास क्या हुआ ? कल ये दीप मैं फिर जलाऊँगा। तुम मेरी संतान तब टूटा जब मैंने देखा कि तुम्हें शीशेमें अपना चेहरा देखना हो, मेरा ही अंश हो। मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ। तुम्हें तो याद था, पर मेरी आँखोंमें अपने लिये स्नेह नहीं। तुमने जरूरत पानेके लिये मेरे मनमें जो चाहत और धीरज है, उसकी तुम तो न समझी, पर फिर भी मैंने तुम्हें अपना आशीर्वाद दिया। कल्पना भी नहीं कर सकते। यह जरूरी नहीं कि तुम किसी वह आशीर्वाद जो कभी हर परीक्षामें तुम्हारे लिए अमूल्य था, विवशतापूर्वक मेरा ध्यान करो। में तुम्हारे मुखसे अपने लिये अपार प्रशंसा नहीं, बल्कि पर दुनियाकी भाग-दौड़ने तुम्हें इसका मूल्य भुलवा दिया है। तुम घरसे निकले, यह सोचकर कि तुम अकेले हो, प्यारके दो बोल सुनना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी आँखोंमें दुनियासे पर तुम्हें अपने कदमोंके साथ मेरे कदमोंकी आहट सुनाई ही संकोच नहीं बल्कि अपने लिये स्नेह देखना चाहता हूँ और नहीं दी। पूरा समय तुम अपने कार्योंमें तथा मित्रोंके बीच हाँ, मैं तुम्हारी प्रार्थनाओंमें डर और इच्छाएँ नहीं, बल्कि व्यस्त थे और मैं पहलेकी तरह तुम्हें एकटक देख रहा था। आदर और स्नेह देखना चाहता हूँ। तुम्हारा भय, तुम्हारी दोपहर हुई और मैंने देखा कि भोजन करनेसे पहले तुम इच्छाएँ, तुम्हारा दु:ख—सब मेरे होंगे, और मैं तुम्हारा। इधर-उधर नजरें घुमा रहे थे। संकोचसे भरी तुम्हारी आँखें कल फिर तुम नींदसे उठोगे, एक नयी भोरके साथ क्या मुझे याद करनेसे रोक रही थीं? और संकोच भी और मैं फिर तुम्हारा स्नेहपूर्वक इन्तजार करूँगा, एक बार किससे ? मित्रजनसे, दुनियासे, या फिर अपने आपसे ? फिर अपनी आशाका दीप जलाये, यह सोचकर कि कभी तो समयका पहिया यूँ ही चलता रहा और मेरे इन्तजारके तुम्हें मेरी उपस्थितिका एहसास होगा। क्षण यूँ ही बीतते रहे। इसी प्रकार शाम हो गयी और तुम —तुम्हारा साथी भगवान्।[ प्रेषक-श्रीएम० के० रायजी]

संत श्रीदेवराहा बाबाके वचनामृत (वैकुण्ठवासी श्री श्री १००८ श्रीगोकुलदासजीद्वारा संकलित)

🕯 स्नान करनेसे तनकी शुद्धि, दान करनेसे धनकी

🔹 मनको निर्विषय करना ध्यान है, मनके विकारोंको त्यागना स्नान है। शुद्धि और ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है।

🔹 जितना सत्संग करें, उससे दुगुना मनन करें। 🔹 प्रतिदिन यथासाध्य कुछ-न-कुछ दान अवश्य

करो, इससे त्यागकी प्रवृत्ति जागेगी।

🕏 संसार सरायकी तरह है, हमारा अपना स्थायी

आवास तो प्रभुका धाम है। 🛊 खुब जोर-जोरसे भगवन्नामका उच्चारण करो।

ऊँचे स्वरमें भजन करनेसे मन संकल्प-विकल्पसे मुक्त हो जाता है।

🔹 सत्य ईश्वरका स्वरूप है और असत्यके बराबर

कोई पाप नहीं है। 🔹 भक्ति चरमावस्थापर तब पहुँचती है, जब

भक्तके लिये भगवान् व्याकुल होते हैं। 🔹 सम्पत्ति पाकर भी जिनमें उदारतापूर्वक दानकी

या सेवाकी भावना नहीं आती, वे भाग्यहीन हैं। 🔹 इस भावका बराबर स्मरण रखना चाहिये कि

संसार हमसे प्रतिदिन छूट रहा है।

🕯 कलियुगमें पाप नहीं करना ही महान् पुण्य है। 🔹 संसारमें कितना सुख-भाग तुम्हें प्राप्त होगा,

यह ईश्वरने पहले ही सुनिश्चत कर दिया है।

🔹 जो व्यक्ति वाणीका, मनका, तृष्णाका वेग सहन कर लेता है, वह महामृनि है।

🛊 वाणीको मधुर और विवेकसम्मत बनानेके लिये

क्रोधपर विजय प्राप्त करो।

🔹 देवता, गुरु, मन्त्र, तीर्थ, औषधि और महात्मा

श्रद्धासे फल देते हैं, तर्कसे नहीं।

🕸 मनका शान्त रहना ही योगका लक्षण है।

🕏 पर-दोष-दर्शन भगवत्प्राप्तिमें बड़ा विघ्न है।

🔹 मानव जीवनका परम लक्ष्य केवल दु:ख-सुख भोगना नहीं है, अपित उनके बन्धनसे मुक्त होना है।

🕸 भक्ति सुधाकी तरह है, जितना पियोगे उसी अनुपातमें और पीनेकी इच्छा होगी। 🔹 ध्यानके बिना ईश्वरकी अनुभृति नहीं होती।

🔹 जगतुके किसी भी पदार्थसे इतना स्नेह न करो

कि वह प्रभू-भक्तिमें बाधक बन जाय। 🔹 अपने बलको मनुष्य जब भगवान्के बलसे

अलग मानता है तो वह बल आसुरी हो जाता है। 🔅 मानसिक पापोंका भी परित्याग करो। मनमें

जमी हुई जीर्ण वासना भी दुष्कर्म कराती है। 🔅 भूखोंको रोटी देनेमें और दुखियोंके आँस्

पोंछनेमें जितना पुण्य-लाभ होता है, उतना वर्षोंके जप-तपसे नहीं होता है। 🔹 संसारमें रहनेसे नहीं, मनको संसारमें लगानेसे

पतन होता है। 🕯 संसारमें रहो, पर अपनेमें संसारको मत रखो। 🔹 उपदेश-श्रवणके समय मन सत्त्वगुणमें रहता

चिन्तन–मनन आवश्यक है। 🕯 ईश्वर गुप्त है, अत: उसकी प्राप्तिके लिये जो

भी साधना करो, वह गुप्त रखो। 🔹 मनुष्य संकटके समय ईश्वरकी तथा अन्यान्य

जीवोंकी दयाका पात्र होता है। 🕸 भक्ति तीन प्रकारकी होती है। पहली जो

पत्थरके समान डूब जाती है और बाहरसे गीली हो जाती

है, किंतु भीतरसे सूखी रहती है। दूसरी जो कपड़ेके समान सब तरफसे गीली हो जाती है, फिर भी पानीसे अलग रहती है। तीसरी जो शक्करके समान पानीके

है, परंतु बादमें चंचल हो जाता है। एकान्तमें उपदेशोंपर

साथ घुलकर एक हो जाती है। यही भक्ति श्रेष्ठ है। भक्तिके सात सोपानोंकी चर्चा करते हुए तुलसीने लिखा

है—'एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। खुपति भगति केर पंथाना।'

🕯 सच्चे अकाम भक्तकी यही पहचान है कि वह परम विश्वासके साथ एक बार भगवान्के सामने अपनी

बात रखकर चुपचाप भगवान्का निर्भय भजन करता रहता है। [प्रेषक — श्रीललनप्रसादजी सिन्हा]

संख्या ३ ] आध्यात्मिक कथा— पश्चिक ( श्रीसत्यप्रकाशजी किरण ) भगवान्ने कहा—'परदेश जाकर तुम्हें गाढ़ी कमाई उठा, यह सोचकर कि अब वह बलवान् है। हाय! करनी होगी। राह-खर्चके लिये यहाँसे कुछ भी नहीं मूर्खने यह न जाना कि यह बल कुछ उसने अपनी मिलेगा। स्वावलम्बनसे ही तुम्हें सब कुछ करना होगा। मेहनतसे नहीं पाया है, यह भी उसी गुप्त दयालुका दान यह सारा कष्ट इसीलिये दिया जाता है कि तुम अपनी है, जिसे वह भूल चुका है। कमाईसे यहाँ सुखका घर बना सको। यह तुम्हारी परीक्षा पथिक आया था जगत्-परदेशमें, मजूरी करने। है। समयपर मेरा स्मरण करना।' उसने देखा कि इस परदेशमें दो पथ हैं। एक पथ सीधा-मनुष्यने उत्तर दिया—''देव! आप मुझपर विश्वास सा और दूसरा काँटोंसे भरा। उसे एक दिन एक प्राणीने करें। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि आपको स्मरण बताया भी कि सीधा-सा पथ दु:खमय है, सड़क तो रखते हुए अक्षरश: वैसा ही करूँगा, जैसा आपने आदेश चिकनी है, पर अन्तमें गहरी खाई है; और वह जो दिया है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' ही हमारा ध्येय रहेगा।" कँटीला पथ है, वह 'सत्य पथ' कहलाता है, उसके भगवान्ने आशीर्वाद दिया और पथिक चल पड़ा। अन्तमें सुख है। पथिकने विश्वास न किया; सभी तो उस कुछ दूर जानेपर उसे नींद सताने लगी, इसलिये वह एक सीधे-से पथपर हँसते हुए खुशी-खुशी चले जा रहे थे। जगह सो गया और लगातार नौ महीनेतक सोता ही रहा। उस कँटीले पथपर जानेमें उसे कठिनाई और मूर्खता और तब एक दिन वह एक ऐसी जगहपर पहुँचा, जो मालूम हुई और तब वह उसी सीधे पथपर चल पडा, उसके लिये एकदम नयी थी। उसे घेरकर उसीके समान बहुत-से उसके संगी भी मिल गये। कई प्राणी बैठे हुए थे। उसने देखा कि उसकी देहपर उस पथपर अपने संगियोंमें उसे मिली नारी। कुछ भी नहीं है। उसमें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया पथिककी प्रसन्नताका पारावार न रहा। उसे नारीमें मिला था-हाथ, पैर, आँख, जीभ आदि शरीरके सभी अंग मादक सौन्दर्य, मिली वासनाकी कोमल और मार्मिक चोटें। पथिकने बड़ी खुशीसे अपने ऊपर चोटें लगने दीं। छोटे, कोमल और अति सुकुमार हो गये थे। बड़ी भूख लगी थी। उसने खानेके लिये कुछ पथिकको यह पथ बड़ा ही चिकना, सुन्दर, सुखकर और सहज दीखा। नारीने उसे सौन्दर्यकी छलकती प्यालीमें मॉॅंगना चाहा तो उसके कण्ठसे स्वर निकला, पर भाषा न निकली। ऐसे दु:खके समयमें उसने भगवान्को तो वासनाकी मादक मदिरा भर-भरकर पिलाना आरम्भ याद नहीं किया, पर वह रो पड़ा और लगा चिल्लाने किया और पथिक खूब छककर पीने लगा। वह अब अपनी बेबसीपर। इस समय एक उसीके समान प्राणीने खूब पीता, चलता तब पीता, रुकता तब पीता, और वह उसका छोटा-सा मुँह एक कोमल स्थानमें सटा दिया। रसीली नारी उसे पिलाये ही जाती। नारीकी वृत्ति, प्रवृत्ति, कृति, प्रकृति—सभी गुणोंने उसे मुग्ध कर लिया था। उसने तब एक तरल पदार्थका अनुभव अपनी जीभपर किया और बड़े सुखसे उसे पान करने लगा। ऐसे पथिककी आँखें मदसे मतवाली होकर जैसे चेतना खोने आनन्दके समयमें भी उसने भगवान्को धन्यवाद देना तो लगीं। अब नारी उसके आगे-आगे चलती और उसके चलनेसे पायलकी जो झनकार होती, उसीका अनुसरण दूर रहा, स्मरणतक न किया। पथिक करता जाता था। इस तरह चलते-चलते एक पथिक अब सुकुमार और दुर्बल न रह गया था। दिन नारी एक खंदकके ऊपर रुकी। उसके रुकते ही उसने देखा कि उसके हाथ-पैर पुष्ट हो गये हैं। उसने पथिक भी रुक गया। इस समय उसपर नशेका पूरा अपनेमें बलका अनुभव किया और ज़रा गर्वसे फूल प्रभाव था। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं, पैर लड़खड़ा रहे

भाग ९२

बार उसकी ओर देखा और फिर उसे जोरोंसे उस गहरे मुसकानके साथ बड़े ही मधुर स्वरमें बोली—'मैं मृत्यु-खंदकमें ढकेल दिया। प्रथिक सँभल न सका और सन्दरी हैं।' प्रथिककी गर्दन इस समयतक बहुत ही कस

खंदकमें ढकेल दिया। पथिक सँभल न सका और सुन्दरी हूँ।' पथिककी गर्दन इस समयतक बहुत ही कस नीचेकी ओर गिरा—पानीमें। इस समय भयके मारे गयी थी। उसकी आँखें बाहर चली आयीं और जीभ

उसका नशा छूट गया। उसने देखा कि वह उस खंदकमें बड़ी-सी होकर बाहर झूलने लगी। धीरे-धीरे उसने गिर पड़ा है। उसके छिछले पानीमें उसे एक गठरी मृत्यु-सुन्दरीके दृढ़ आलिंगनमें अपनी सारी चेतना

दिखायी दी। वह उसने उठा ली। उसकी आँखें समर्पित कर दी।
प्रसन्नतासे नाच उठीं; समझा उसने कि आखिर वह कुछ उसे जब होश आया, तब उसने देखा कि वह एक

पा गया है। ठीक इसी समय एक सुन्दर रेशमी रस्सी महान् तेजोमय पुरुषके सामने खड़ा है। उस तेजको उसके सिरपर लटकने लगी। उसने रस्सीके बल ऊपर देखकर उसकी आँखें चौंधिया गयीं। वह उस पुरुषको चढना आरम्भ किया और साथमें वह गठरी भी लेता पहचाननेकी चेष्टा कर रहा था—जैसे उसे कहीं देखा

चढ़ना आरम्भ किया और साथमें वह गठरों भी लेता. पहचाननेको चेष्टा कर रहा था—जैसे उसे कही देखा चला; सोचा, न जाने कितना धन है उसमें। ऊपर हो। उस अपार तेजस्वी पुरुषने उसे एक बार सिरसे पहुँचकर देखा कि एक अत्यन्त ही सुन्दर रमणी जैसे. पैरतक देखा और जरा मुसकराकर बोले—आ गये

उसकी प्रतीक्षामें ही खड़ी हुई है। यह अवश्य वह पहली पिथक! तुम परदेशसे? और साथ लाये हो यह पापकी नारी नहीं थी—यह उससे अत्यन्त चित्ताकर्षक थी। भीगी गठरी? उसने अपने दोनों हाथोंको फैलाकर कहा—'आओ, पिथकने घबराकर देखा कि उसके सिरपर उसकी

पथिक! मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ।' पथिकने अपने वह गठरी अब भी रखी हुई है और तब वह बेहोश सिरपर वह गठरी रखी और अपनी दोनों भुजाएँ फैलाता होकर गिर पड़ा। भगवान्ने मुसकराकर कहा—'काल- हुआ उस सुन्दरीसे आलिंगनबद्ध हो गया। उस रमणीने सुन्दरीने इसे उस पाप-खंदकमें गिराया और मृत्यु- अपनी बाँहें उसकी गर्दनमें डाल दीं और धीरे-धीरे उन्हें सुन्दरीने यहाँ लौटा दिया।'

एक लकड़हारा था। वह जंगलसे लकड़ियाँ काटकर लाता और उन्हें बेचकर बड़े ही कष्टपूर्वक अपना जीवन-यापन करता था। अकस्मात् उस मार्गसे जहाँ वह लकड़ी काट रहा था, एक संन्यासी निकले। उन्होंने

जीवन-यापन करता था। अकस्मात् उस मार्गसे जहाँ वह लकड़ी काट रहा था, एक संन्यासी निकले। उन्होंने लकड़हारेके दुःखको देखकर उससे कहा—'बेटा! जंगलमें और आगे बढ़ो, तुम्हें लाभ मिलनेवाला है।' लकड़हारा आगे बढ़ा, तब उसे एक चन्द्रनका वश्च मिला। उसने उस वश्चसे बहुत-सी लकड़ियाँ काट लीं और

लकड़हारा आगे बढ़ा, तब उसे एक चन्दनका वृक्ष मिला। उसने उस वृक्षसे बहुत-सी लकड़ियाँ काट लीं और उसे ले जाकर बाजारमें बेचा। इससे उसको बहुत लाभ हुआ। उसने सोचा—'संन्यासीने चन्दनके वृक्षका नाम क्यों नहीं लिया? इतना ही क्यों कहा कि और आगे बढो।' दूसरे दिन वह जंगलमें और आगे बढा, तब उसे

क्यों नहीं लिया ? इतना ही क्यों कहा कि और आगे बढ़ो।' दूसरे दिन वह जंगलमें और आगे बढ़ा, तब उसे ताँबेकी एक खान मिली। उसने उसमेंसे मनमाना ताँबा निकाला और बाजारमें बेचकर रुपया प्राप्त किया। तीसरे दिन वह और आगे बढ़ा, उस दिन उसे एक चाँदीकी खान मिली। उसने उसमेंसे मनमानी चाँदी

तीसरे दिन वह और आगे बढ़ा, उस दिन उसे एक चाँदीकी खान मिली। उसने उसमेंसे मनमानी चाँदी निकाली और बाजारमें बेचकर और अधिक रुपया प्राप्त किया। चौथे दिन वह और आगे बढ़ा, वहाँ उसे सोने

और हीरेकी खानें मिलीं। अन्तमें वह बड़ा धनवान् हो गया। इसी प्रकार वे लोग, जिन्हें ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषा होती है, थोड़ी-सी सिद्धि प्राप्त करनेपर रुकते नहीं, बराबर बढ़ते ही जाते हैं। अन्तमें उस

प्तान्न हार हेकी काइट्स स्वान कर होता है से स्वान स

या ३ ] अनन्य भगवत्प्रेमसे ही जीवनकी सार्थकता २७		
***********************	************************	<u> </u>
अनन्य भगवत्प्रेमसे ही जीवनकी सार्थकता		
	े भेँबरलालजी परिहार)	
भगवत्प्रेम भगवान्का साक्षात् स्वरूप ही है। १	नगवान् <b>भक्त्या त्वनन्यया शक्य अ</b> ह	मेवंविधोऽर्जन।
सगुण-साकारकी उपासना करनेवालोंके लिये प्रेमम	•	=
ु निर्गुण–निराकारकी उपासना करनेवालोंके लिये आ		• (११।५३-५४)
्र बन जाते हैं। भगवान्का कृष्णावतार और उनके त		
चरित ऐसे हैं कि वे ज्ञानीको भी बरबस अपर्न	3	-
आकर्षित कर लेते हैं ' <b>कर्षति आकर्षति इति कृ</b>	3 3	
अद्वैतवेदान्तके महान् तत्त्वज्ञ मधुसूदन सरस्वती		
भुवनमोहिनी छविसे आकर्षित होकर कहते हैं—	मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जान	ानेके लिये और प्रवेश
ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्टि	<b>कयं</b> करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्र	ग्रप्त होनेके लिये भी
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्य	नुते। शक्य हूँ।	
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयान्	च्चरं अत: यह सुस्पष्ट है कि अनन	य भगवत्प्रेम ही हमारे
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो ध	ावित ॥    जीवनका एकमात्र लक्ष्य होना चाहि	ये। शास्त्रोंके अनुसार
अर्थात् ध्यानाभ्याससे मनको स्ववश करके ये	ोगीजन तो एकमात्र इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके ि	लये हमें यह मनुष्य-
यदि किसी प्रसिद्ध निर्गुण, निष्क्रिय परमज्योतिको	देखते शरीर मिला है। भगवान्के चरणक	मलोंमें प्रेम होना ही
हैं तो वे उसे भले ही देखें, हमारे लिये तो श्रीयमु	3,	
तटपर जो 'कृष्ण'नामवाली वह अलौकिक नील		•,
दौड़ती-फिरती है, वही चिरकालतक लोचनोंको चक	•	
डालनेवाली हो।	ही जीवनका सार बताते हुए लिखा	
शास्त्रों और सन्तोंके उपदेशोंमें मनुष्य-श	•	•
दुर्लभता तथा महत्ताके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक स		-
गया है। यह देवदुर्लभ मनुष्य-शरीर भगवान्की अ		
कृपासे ही मिलता है। <b>'कबहुँक करि करना न</b>		
<i>देत ईस बिनु हेतु सनेही॥</i> '(रा०च०मा० ७।४		कवितावली, उत्तर० ३७)
अत: यह समझनेयोग्य बात है कि हमें इस म		
शरीरमें उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रयास करना र	•	यह ज्ञान भी शोभा
जो सर्वश्रेष्ठ हो, जिससे हमें परम लाभ हो तथा जि		
प्राप्तिसे हमारे सम्पूर्ण दुःखोंका सदा-सदाके लिय		
हो जाय तथा परमानन्दकी प्राप्ति भी हो जाय	_	रा०च०मा० २।२७७।५)
वस्तु एकमात्र श्रीभगवान् ही हैं और उनकी प्राप्ति	_	क भगवत्प्रमस राहत
है केवल उनके प्रति अनन्य प्रेमसे। स्वयं भग् सीमर्भे स्वर्णनानी स्वित्त स्वर्णनानी		
गीतामें इस बातकी पुष्टि की है—	नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं	÷ <del>6</del>
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।		•
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।	l	(१।५।१२)

भाग ९२ \* भगवत्प्रेमके सामने सभी कुछ तुच्छ है, मुक्तिका नहीं है तो भजन कैसे होगा? संसारके पदार्थ, व्यक्ति, भी कोई मूल्य नहीं है। वास्तवमें भगवत्प्रेमको भगवान्से परिस्थित आदि हमारे साथ सदा नहीं रहेंगे, वर्तमानमें भी बड़ा कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। भी उनसे निरन्तर वियोग हो रहा है—यह जानते हुए भी भगवत्प्रेमके लिये लोक-परलोकको न्यौछावर कर देना उनकी ही कामना करते हैं, रात-दिन उनकी प्राप्तिके तो बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। गोस्वामी तुलसीदासजी लिये ही प्रयास करते हैं। जो सदासे हमारे अपने हैं और महाराजने इस सम्बन्धमें बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें सदैव हमारे अपने रहेंगे, कभी हमारा साथ नहीं छोड़ते, उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है— उन भगवान्की प्राप्तिके लिये—उनका अनन्य प्रेम प्राप्त करनेके लिये हमारे मनमें कभी इच्छा ही नहीं होती। यह सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥ जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥ सामान्य मूर्खता नहीं, बल्कि बड़ी भारी मूर्खता है, परमकोटिका दुर्भाग्य है। ऐसे व्यक्ति मनुष्य कहलानेके (रा०च०मा० २। २९१। १-२) भगवत्प्रेमसे रहित योग कुयोग है तथा ज्ञान अज्ञान कदापि योग्य नहीं हो सकते। गोस्वामी तुलसीदासजी है। जहाँ भगवान्के चरणोंमें अनन्य प्रेम रुचिकर नहीं महाराजने लिखा है-है—वह घर, वह सुख, वह मित्र तथा वे माता-पिता एवं तिन्ह तें खर, सुकर, स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै। भाई आगमें जलकर भस्म हो जायँ, जो अनन्य 'तुलसी' जेहि रामसों नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ, बिषान न द्वै॥ भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये सहायता नहीं करते— जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्यै। जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ। जिर जाउ सौ जीवनु, जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु है।। सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥ (कवितावली, उत्तर ४०) उच्चकोटिका विद्वान् भी यदि भगवत्प्रेमी नहीं है, (रा०च०मा० २।१८५) भगवत्प्राप्तिके पथपर अग्रसर नहीं है तो उसकी विद्वत्ताका यह गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी बात है कि चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कुछ भी मूल्य नहीं है। अपार धन-सम्पत्ति, वैभव, पद, आदिके ऊपर भगवान्की जैसी कृपा थी, वैसी कृपा अधिकार, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा आदि होनेपर भी यदि हमारे ऊपर भी है; क्योंकि भगवानुमें विषमता नहीं है। जीवन अनन्य भगवत्प्रेमसे रहित है तो ये सभी निरर्थक, उन्होंने स्वयं कहा है— तुच्छ और जीवनकी बर्बादीके कारणमात्र हैं। समोऽहं सर्वभृतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। झुमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे, मद अंबु चुचाते। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मिय ते तेषु चाप्यहम्॥ तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौनके गौनहु तें बढ़ि जाते॥ (गीता ९।२९) भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते। में सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा ऐसे भए तौ कहा, तुलसी, जो पै जानकीनाथके रंग न राते॥ अप्रिय है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे (कवितावली, उत्तर० ४४) भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। संसारकी कोई भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति हमें फिर हम उनके जैसे भगवत्प्रेमी भक्त क्यों नहीं बन तत्त्वतः मिल ही नहीं सकती; क्योंकि यह असत् 'नहीं' सकते हैं ? कारण स्पष्ट है-हम भगवान्के सम्मुख नहीं तत्त्व है। हमारे अनन्त जन्म हो चुके हैं और हमारे उन होते, संसारके सम्मुख होते हैं। सांसारिक सुख-वैभव जन्मोंके अनन्त माता-पिता, पत्नी, पुत्र, धन-सम्पत्ति बदल गये। वे सब आज कहाँ हैं? वे सब 'नहीं' में प्राप्त करना ही हमने अपना उद्देश्य बना लिया है। कभी स्वप्नमें भी हमारे मनमें यह इच्छा पैदा नहीं होती कि बदल गये। इसी प्रकार इस जन्मके भी सभी सम्बन्धी, हम भी भगवानुके अनन्य प्रेमी भक्त बनें। जब इच्छा ही धन-वैभव आदि 'नहीं' में बदल जायँगे, इनकी यादतक

पंख्या ३ ]     अनन्य भगवत्प्रेमसे ही जीवनकी सार्थकता	
<b>\$</b>	***********************************
नहीं रहेगी। इनकी प्राप्ति एवं आशामें मनुष्य-जीवनके	पूरा हो जायगा, कुछ भी शेष नहीं रहेगा। ज्ञानयोग,
अमूल्य समयको बरबाद कर देना कहाँकी बुद्धिमानी है ?	भक्तियोग, कर्मयोग—सब सिद्ध हो जायँगे। अनन्त
मनुष्यता और बुद्धिमत्ता इसी बातमें है कि हमारा सम्पूर्ण	ब्रह्माण्डोंके मालिक भगवान् हमारे हैं—फिर बाकी क्या
समय भगवत्प्राप्तिकी साधनामें ही व्यतीत हो।	रहा ? कैसे बाकी रहेगा ?
'केवल भगवान् ही मेरे हैं, भगवान्के अलावा अन्य	संसारको दृढ़तापूर्वक अपना नहीं माननेपर भी कुछ
कोई भी मेरा नहीं है'—यह भगवत्प्रेम-प्राप्तिका सर्वोपरि	समयतक संसारका अपनापन दिख सकता है, किंतु अन्ततः
साधन है। इस बातको केवल पढ़कर सीखना नहीं है,	इसका सर्वथा छूट जाना निश्चित है; क्योंकि यह असत्
बल्कि दृढ़तापूर्वक स्वीकार करना है। यदि यह बात	े है। असत्का त्याग वर्तमानमें ही किया जा सकता है; परंतु
ठीक-ठीक जीवनमें उतर गयी तो सम्पूर्ण वेदों, उपनिषदों,	इसके प्रभावके नाशमें समय अपेक्षित है। कारणका नाश
गीता, रामायण, भागवत, सन्तोंकी खास बात जीवनमे	हो जानेपर भी कुछ समयतक कार्यकी प्रतीति हो सकती
उतर जायगी। भगवान्के साथ अनन्य सम्बन्धका अनुभव	है। जैसे वृक्षकी जड़ कट जानेपर भी उसकी हरियाली
हो जायगा और प्रकृतिके साथ माना हुआ सम्बन्ध छूट	कुछ समयतक रहती है, किंतु उसका सर्वथा नष्ट हो जाना
जायगा। केवल भगवान् ही मेरे हैं, अन्य कोई मेरा नही	ि निश्चित है। अत: असत्का त्याग करनेपर भी असत्के
है—यह बात इतनी अधिक ऊँची है कि इसको दृढ़तापूर्वक	प्रभावको कुछ समयतक अनुभव किया जा सकता है।
स्वीकार करनेसे मनुष्य भगवत्प्रेमी, जीवन्मुक्त तत्त्वज्ञ बन	यदि हम अपने निर्णयमें कोई शंका नहीं करेंगे तो असत्का
जाता है। यह कोई मामूली बात नहीं है, अपितु बहुत ही	प्रभाव स्वतः ही नष्ट हो जायगा।
ऊँची बात है। प्रियताकी जागृतिमें आत्मीयताके अलाव	भगवान्में हमारी प्रियता स्वतः ही होनी चाहिये;
और कोई अन्य साधन है ही नहीं। भगवान्ने गीतामे	•
इसको सर्वाधिक गोपनीय— <b>'सर्वगुह्यतमम्'</b> साधन कह	ं और कौन हो सकता है? संसारकी सम्पूर्ण वस्तुएँ,
है। वर्षोंतक सत्संग-भजन करनेसे जो लाभ नहीं होता है,	परिस्थितियाँ, व्यक्ति, माता, पिता, पत्नी, पुत्र, बन्धु, धन-
वह लाभ भगवान्को अपना माननेसे एक ही दिनमें हो	सम्पत्ति आदि आत्माके लिये ही प्रिय होते हैं, उन-उनके
जाता है। शर्त केवल इतनी ही है कि भगवान्के अलाव	
किसीको भी अपना न माने और मनमें कोई भी कामना न	मार्मिक विवेचन किया गया है। यथा—
रखे। यह याद रखनेकी बात है कि जबतक निषेध नही	न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति,
होता, तबतक विधिको सिद्धि नहीं होती। मेरे तो गिरिधर	िन वा अरे जायायाः कामाय जाया प्रिया भवति, न
गोपाल—यह बात सभी कहते हैं, किंतु इससे भगवान्की	ं वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति, न वा
प्राप्ति नहीं होती। मीराबाईने कहा—' <i>मेरे तो गिरध</i> र	् अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति, न वा अरे
<i>गोपाल, दूसरो न कोई'</i> यही बात महत्त्वपूर्ण है तथ	सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय
अनन्यताकी प्राप्तिका खास कारण है। ' <i>दूसरो न कोई</i>	<b>' सर्वं प्रियं भवति।</b> (बृहदा० २।४।५)
माननेमात्रसे मीराबाई इतनी ऊँची भक्त बन गयीं। उनक	हमारा आत्मामें सर्वाधिक प्रेम है और वह आत्मा
जड़ शरीर भी चिन्मय बनकर भगवान्में विलीन हो गया	। है भगवान्। अतः भगवान् ही हमारे परम प्रेमास्पद हैं।
केवल भगवान्को ही अपना मानने और किसी	स्वयं भगवान् इस सम्बन्धमें कहते हैं—
अन्यको अपना नहीं माननेसे भगवान्का भजन-स्मरण	•
स्वतः होगा, करना नहीं पड़ेगा। सद्गुण–सदाचार स्वतः	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
आयेंगे, दुर्गुण–दुराचार स्वत: दूर होंगे। हमारा सब कार्य	(श्रीमद्भा० ३।९।४२)

भाग ९२ 'विधाता! मैं आत्माओंका भी आत्मा और स्त्री-रहे थे। अत: उनपर भी श्यामसुन्दर-जैसा ही प्रेम हो पुत्रादि प्रियोंका भी प्रिय हूँ। देहादि भी मेरे ही लिये प्रिय गया। परीक्षित्ने शुकदेवजीसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने हैं। अत: मुझसे ही प्रेम करना चाहिये।' बड़ा ही सुन्दर तथा हृदयस्पर्शी उत्तर दिया। गीतामें भी भगवान्ने बताया है कि मैं सभी सर्वेषामिप भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः। प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ— इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:। कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्। जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥ (गीता १०।१०) मछलीको जिस प्रकार जल प्यारा होता है, उसी (श्रीमद्भा० १०।१४।५०, ५५) प्रकार हमारे आत्मस्वरूप भगवान् हमें प्यारे लगने राजन्! संसारके सभी प्राणी अपनी आत्मासे ही चाहिये-सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं। पुत्रसे, धनसे या और किसीसे जो प्रेम होता है—वह तो इसलिये कि वे वस्तुएँ हरिर्हि साक्षाद् भगवान् शरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्। (श्रीमद्भा०) अपनी आत्माको प्रिय लगती हैं। इन श्रीकृष्णको ही तुम श्रीमद्भागवतमें एक सुन्दर प्रसंग है। भगवान् श्रीकृष्णको सब आत्माओंका आत्मा समझो। संसारके कल्याणके एक सामान्य बालककी भाँति यमुनातटपर ग्वाल-बालकोंके लिये ही योगमायाका आश्रय लेकर वे यहाँ देहधारीके साथ खेलते देखकर ब्रह्माजी सोचने लगे कि क्या ये ही समान जान पडते हैं। भगवान् हैं ? ये कैसे भगवान् हैं, जो सामान्य बालकोंके उपर्युक्त प्रकारसे भगवानुको ही अपना परम आत्मीय साथ इस प्रकार खेल रहे हैं? ब्रह्माजीको मोह हो गया समझ लेनेपर उनमें स्वत: ही अनन्य प्रेम होगा। आत्मीय और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी परीक्षा लेनेका निश्चय सम्बन्धसे ही साधकमें भगवान्की तैलधारावत् स्मृति और अगाध प्रियताकी जागृति होती है। भगवान्में यह किया। तदनुसार उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण और उनके सखाओंसे दूर-दूर घास चर रहे बछड़ोंको एक गुफामें ले अगाध प्रियता ही जीवनका परम लाभ है। संसारका जाकर मूर्च्छितकर सुला दिया और जब भगवान् श्यामसुन्दर कार्य हुआ तो क्या और नहीं हुआ तो क्या, अन्तत: तो सब कुछ 'नहीं' में ही बदलनेवाला है। इहलोक-बछड़ोंकी खोजमें निकले तो ब्रह्माजीने उनके सखाओंको भी मूर्च्छितकर गुफामें सुला दिया। बछड़ों तथा अपने परलोककी चिन्ता छोड़कर केवल भगवत्प्रेममें ही निमग्न सखा ग्वाल-बालकोंको नहीं देखनेपर भगवान् श्यामसुन्दरको रहनेवालोंके सभी कार्य भगवत्कुपासे स्वत: सिद्ध होते ब्रह्माजीकी सारी करतूतका पता चल गया। उन्होंने ब्रह्माजीको हैं। अत: जिस प्रकार चातक बादलोंसे स्वाति-बूँदके सबक सिखानेके लिये स्वयं ही सभी बछड़ों तथा ग्वाल-अतिरिक्त किसीकी भी याचना नहीं करता है, उसी प्रकार बालकोंका रूप धारण कर लिया तथा पूर्ववत् सभी क्रीडाएँ भगवानुसे उनके अनन्यप्रेमके अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थकी याचना नहीं करनी चाहिये। पद्मपुराणमें कहा करने लगे। वे दिनभर ग्वाल-बालकोंके साथ बछड़े चराते और सायंकाल लौटकर गोकुल चले जाते। भगवान् स्वयं गया है-ही स्वयंके साथ क्रीडा करने लगे। इस प्रकार एक वर्षतक ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन। यह लीला अविराम चलती रही। भगवानुकी इस लीलामें ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा॥

आमुष्मिकं प्रियः कृष्णः स्वयमेव करिष्यति।

सरःसमुद्रनद्यादीन्विहाय चातको

गोपियोंका अपने पुत्रोंके प्रति तथा गायोंका अपने बछड़ोंके

प्रति प्रेम अत्यधिक बढ़ गया। वास्तवमें तो ग्वाल-बालोंके

( श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला ) कष्टोंको झेला होगा! जहाँ न खानेका ठिकाना, न सोनेका सपनोंको यथार्थमें बदलनेवाला ही महान् होता है। ठिकाना और न वस्त्रका ठिकाना। महलकी सारी सुविधाओंसे

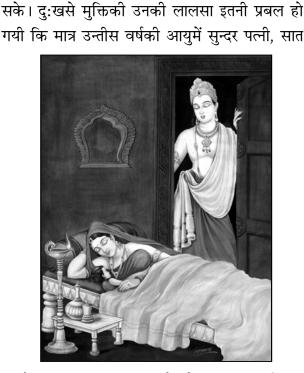
सपनोंको यथार्थमें कैसे बदलते हैं ?

सपनोंको यथार्थमें कैसे बदलते हैं?

सपनोंको जो केवल सपनोंतक ही सीमित रखते हैं, उनमें महानताके कोई लक्षण नहीं होते। यहाँ कतिपय महापुरुषोंके वंचित हो गये। उद्देश्य था दु:खसे मुक्तिका उपाय खोजना— उदाहरणोंको प्रस्तुत किया जा रहा है, जिन्होंने सपनोंको सम्पूर्ण मानवताको दु:खोंसे त्राण दिलाना। उपाय खोजनेमें यथार्थमें बदला और महान् हुए। जो भी कष्ट आये, उसको सहर्ष झेला। छः वर्ष जंगलमें भगवान् बुद्ध राजा शुद्धोधनके एकमात्र पुत्र थे।

संख्या ३ ]

राज्यके उत्तराधिकारी थे। शरीरसे सुगठित थे। सभी विद्याओंमें पारंगत थे। वे विद्वान् तो थे ही, साथ ही धनुर्विद्या, घुडसवारी आदिमें भी पारंगत थे। राज्यकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी यशोधरासे उनका विवाह भी हो गया था। महलमें आमोद-प्रमोदके सभी साधन सुलभ थे। पुत्र भी हो गया था। राज्यमें भ्रमणके दौरान उन्होंने एक शव, एक कमर झुके हुए वृद्ध और एक रोगीको देखा तो उनके अन्त:करणमें यह भावना आ गयी कि संसारमें दु:ख है। अत: दु:खका कारण एवं निवारण खोजना है ताकि प्रत्येक व्यक्ति दु:खसे मुक्ति पा



दिनके पुत्र, महल एवं राज्यको छोड़कर जंगलकी राह

पकड़ ली। महलके सुखोंको भोगनेवाला कैसे जंगलके

बिताये। बहुत-से साधू-सन्तों, महात्माओंसे मिले, लेकिन इनकी दु:ख-मुक्तिका उपाय खोजनेकी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। अन्तमें गयामें पीपलवृक्षके नीचे समाधि लगायी यह सोचकर कि जबतक मुझे दु:खसे मुक्तिका उपाय नहीं

पता लगेगा, तबतक मैं नहीं उठूँगा। उनचास दिनोंकी

समाधिके बाद इन्हें ज्ञानकी प्राप्ति हुई। इस ज्ञानप्राप्तिके

कारण ये दु:खसे मुक्तिका उपाय जान पाये।

महामना मदन मोहन मालवीयने भी अपने सपनेको यथार्थमें बदलनेमें सफलता पायी। आज भी उनका यथार्थ काशी हिन्दु विश्वविद्यालयके रूपमें आप देख सकते हैं। इस अकिंचन ब्राह्मणने जब विश्वविद्यालय स्थापित करनेका संकल्प लिया तो बहुतोंने इन्हें पागल होनेकी संज्ञा दे डाली;

कारण जो काम बड़े-बड़े राजा, महाराजा, धनी एवं सम्पन्न

व्यक्ति नहीं कर सके, वह काम यह अकिंचन ब्राह्मण कैसे कर लेगा! लेकिन संकल्पके धनी इस व्यक्तिने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सभी राजाओं, महाराजाओं एवं धनी व्यक्तियोंके आगे अपनी योजना रखी और सहयोगकी अपील की और इस शुभ संकल्पको पूरा कर सके। मालवीयजी महाराजने सपनेको यथार्थमें बदलनेमें कितना-

अपमान और यात्रा-कष्ट भी इनको अपने संकल्पसे डिगा नहीं सके। इनके इसी त्यागके कारण जनताने इन्हें 'महामना' की उपाधि दी और भारत सरकारने मरणोपरान्त 'भारत-रत्न'की उपाधि देकर इन्हें अलंकृत किया। ऐसे संकल्पके

कितना अपमान सहा, यात्रामें कितना कष्ट सहा, लेकिन

धनी व्यक्ति ही सपनोंको यथार्थमें बदलनेकी क्षमता रखते हैं। महात्मा गांधीने भी देशको आजाद करानेके सपनेको यथार्थमें बदल दिया, लेकिन त्याग, तपस्या, कुर्बानीके

भाग ९२ बाद। गांधीजी बैरिस्टर थे। अच्छे वकील थे। दक्षिण अपने तरहका प्रथम प्रयोग सफल हो गया कि अहिंसासे अफ्रीकामें किसी केसमें बहस करने जा रहे थे तो इनके पास भी देशको अंग्रेजोंकी दासतासे मुक्ति दिलायी जा सकती है। इस प्रकार गांधीका सपना यथार्थमें बदला और देश फर्स्ट क्लासका टिकट होते हुए भी इनको उतार दिया गया, कारण इनके साथ इनकी बोगीमें एक अंग्रेज भी यात्रा कर १५ अगस्त १९४७ को आजाद हो गया। रहा था। उसने सोचा कि हमारे देशका गुलाम आदमी हमारे विश्वके महानतम वैज्ञानिक अलबर्ट आईंस्टीनने अपने साथ कैसे यात्रा कर रहा है, तो उसने रेलवेके गार्डको कमरेमें गांधीका चित्र लगा रखा था तो किसीने उनसे पूछा कहकर इनको सामानसहित उतरवा दिया।गांधीजीने यहींसे कि आपने गांधीका चित्र क्यों लगा रखा है? तो उस अन्यायका प्रतिकार करना प्रारम्भ किया और गांधीजीका महानतम वैज्ञानिकका यही जवाब था कि आनेवाली पीढ़ी महात्मा गांधीके रूपमें ढलना यहींसे प्रारम्भ हुआ। यह विश्वास नहीं करेगी कि यह हाड्-मांसका दुबला-जब १९१५में भारत आये तो गांधीजीको पता चला पतला व्यक्ति कभी इस धराधामपर पैदा भी हुआ था। कि चम्पारनमें भारतीय मजदूरोंके साथ नीलकी खेतीमें आईंस्टीनका यह कथन सोलह आना सही है। उपदेश अंग्रेजोंद्वारा अत्याचार किया जा रहा है। गांधीजी तुरंत देनेवाले बहुत मिलेंगे, लेकिन गांधीजी ऐसे थे कि वही पहले ही चम्पारन पहुँचे और वहाँ न केवल अंग्रेजोंके उपदेश दिया, जिसे स्वयं कर सके। मनसा-वाचा-कर्मणा अन्यायका प्रतिकार किया, अपितु मजदूरोंको उनके शोषणसे वे एक थे, अत: उन्हें महात्मा कहा गया। गांधीजीमें मुक्ति दिलायी और अंग्रेजोंको नीलका व्यवसाय बन्द सपनेको यथार्थमें बदलनेकी क्षमता आयी, अन्यायका प्रतिकार करनेपर बाध्य कर दिया। करनेके कारण और वह भी अहिंसक तरीकेसे। भारतमें अंग्रेजोंने आम आदमीके खानेवाले नमकपर सपनोंको यथार्थमें बदलनेके उदाहरण तो इतिहासमें टैक्स लगाया। नमक आन्दोलनके जरिये इतना तीव्र विरोध भरे पड़े हैं, लेकिन सभीमें एक बात समान रूपसे मिलेगी

हुआ कि नमकपर लगाये टैक्सको अंग्रेज सरकारको वापस कि बिना दृढ़संकल्प, पुरुषार्थ, त्याग, तपस्या, बलिदानके लेना पड़ा। गांधीके ही अहिंसक तरीकेको अपनाकर विश्वका कोई महान् सपना यथार्थमें बदलना सम्भव नहीं है। **राम-दर्शन**( सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालंकार)

प्यारेके गलेका अगर राम हार हो जाता। था कि मुझ पापीका भी उद्धार हो जाता॥ मैं भी प्रभूका कभी लेता। जप जगतसे बाल्मीकी-सा पार हो जाता॥ थोड़ी भी होती। शबरी-सी मुहब्बत भी आश्चर्य! हासिल मुझको जाता ॥ विभीषणकी होती। मेरी तरह मुमिकन कि मेरा था दूर आजार जाता॥ मानिन्द हनुमानके भक्ती रामकी करता। नहीं मेरा भी हो जाता॥ तुलसी-सी हो चाह हृदयमें मेरे जाती। मुझे हो मित्रो राम-दर्शन भी कर्ड बार जाता॥ संख्या ३] कहानी— सादगी ( श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') उनके शरीरमें बहुत अधिक फुंसियाँ थीं। उनमें जलन लिये विभिन्न पद्धतियाँ उपयुक्त हो सकती हैं, ऐसी मेरी रहती थी। खुजली होती थी। प्राय: आँव पड़ती थी। भूख धारणा है। लगती नहीं थीं। सिरमें दर्द होना साधारण बात थी। दूसरे गरमीकी ऋतु थी; किंतु वे सुसभ्य व्यक्ति हैं। भी अनेक रोग थे। वे बहुत सम्पन्न थे। समाजमें प्रतिष्ठा समाजमें सुसंस्कृत एवं सम्मानित माने जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षा तथा वेश उन्हें प्रिय है। मेरे पास वे कोट-थी। अच्छे समझदार तथा उच्च शिक्षा प्राप्त थे। भव्य शरीर मिला था उन्हें अपने शुभकर्मोंके फलस्वरूप; किंत् पतलूनके पूरे वेशमें ही आये थे। मैंने उन्हें जब देखा, रोगोंने उन्हें युवावस्थामें ही जर्जर बना दिया था। इसी वेशमें देखा है। 'भाई साहब!' वे मुझे इसी प्रकार पुकारते थे। 'देखो महेश, तुम अच्छे हो सकते हो! तुम्हें केवल सजातीय होने तथा आयुमें छोटे होनेसे उन्होंने इसे अपना कुछ महीने अपने-आपको मेरे निर्देशके अनुसार चलानेको प्रस्तुत करना पड़ेगा।' मैंने उनसे कहा—'निराश होनेकी अधिकार मान लिया था कि मुझे बड़ा भाई मानकर खुला व्यवहार करें। बहुत दुखी होकर आज वे आये कोई बात नहीं है।' 'मैं अभी—इसी क्षणसे प्रस्तुत हूँ।' उनके स्वरमें थे—'अब तो शरीर छोड़ देनेको जी करता है।' उन्होंने डॉक्टर-वैद्योंकी बहुत चिकित्सा कर ली मुझे दूढ़ता तथा सच्चाईकी झलक मिली। थी। अनेक बड़े नगरोंमें घूम आये थे। खूब इन्जेक्शन 'ठीक है। इसी क्षणसे श्रीगणेश करो!' मैंने उनसे लगे थे और चूर्ण, गोलियाँ, अवलेह कितना खाया था, कहा—'देखो, यह आश्रम है। यहाँ संकोच करनेकी कुछ ठिकाना नहीं था। तैल, मरहम आदि भी भरपूर आवश्यकता नहीं है। यह कोट, कमीज, पतलून उतार डालो। मला गया था। ओषधिके बिना भी मनुष्य दो-चार दिन जाँघिया और गंजी बहुत है इस मौसममें इस स्थानपर।' जी सकता है, यह सोचना ही कठिन था उनके लिये। मैं केवल धोती पहने खुले शरीर बैठा था, अत: उनका कहना था—'मैं तो दवा खाते ही पैदा हुआ। दवा उनको मेरी बात माननेमें कठिनाई नहीं हुई। मैंने उनसे मुँहमें पहले गयी, माताका दूध पीछे मिला।' कहा—'यह तुम्हारी चिकित्साका पहला पाठ है। इन मैं चिकित्सा-व्यवसायी नहीं हूँ। किसी भी वस्त्रोंको घर जाकर विदा कर दो। खादीका धोती-कुर्ता चिकित्सापद्धतिका अच्छा जानकार भी नहीं हूँ। आयुर्वेद, पहनकर तुम अपने सभ्य परिचितोंमें मजेसे जा सकते हो।' होम्योपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिसे थोड़ा-थोड़ा परिचय है और कोई पीड़ित हो तो उसका उपचार 'आज तुम्हारा पेट भरा नहीं होगा।' आश्रममें करना अच्छा लगता है। इसलिये कुछ ओषधियाँ भी भोजनकी घंटी बजी तो महेशने भी हम सबके साथ ही रखता हूँ। सच पूछिये तो आस्तिक होनेके कारण मैं भोजन किया था। गेहूँ-चनेके मिले आटेकी रूखी भाग्य-विधानमें आस्था रखता हूँ। इसलिये किसी रोटियाँ, मोटे चावलका भात, बिना छौंककी दाल और चिकित्सा-पद्धतिमें मेरा आग्रह तथा मेरी आस्था नहीं बिना मिर्च-मसालेका उबाला हुआ लौकीका शाक। है। रोग कर्मभोग हैं। कर्मफलका भोग होनेपर मिटते हैं आश्रमके चौकेमें घी जाता ही नहीं। जो व्यक्ति खूब और अशुभ कर्मके फलोदयकाल आनेपर होते हैं। घी-मसालेसे भरपूर चटपटा भोजन करता आया है, चिकित्सा भी एक प्रकारका प्रायश्चित्त है अशुभ अचार-चटनी, तीन-चार शाक, कोई मीठी वस्तु जिसके कर्मींका, अतएव जो रोगी सामने आया है, उसका प्रतिदिनके भोजनके अनिवार्य अंग हैं, उसकी तृप्ति कष्ट-निवारण जैसे भी शीघ्र एवं सरलतापूर्वक सम्भव आश्रमके भोजनसे कैसे हो सकती थी। है, वही पद्धति ठीक। विभिन्न व्यक्तियों तथा परिस्थितियोंके 'भाई साहब! आज मेरा पेट खूब भरा है।' महेशने

भाग ९२ कल्याण अपने उत्तरसे मुझे प्रसन्न किया—'मुझे तो यह भोजन अगला पाठ देना आज ठीक समझते हैं?' उन्हें भूख लगने लगी थी। आँव पड़ना बन्द हो गया बहुत प्रिय लगा है।' 'यह तुम्हारी चिकित्साका दूसरा पाठ है—सादगीका था। शरीर अभी पूर्णतः रोगरहित नहीं हुआ था; किंतु दूसरा पाठ। तुम्हारे घरके भोजनालयमें अब यह आदर्श आशा हो गयी थी कि स्वास्थ्य प्राप्त हो जायगा। बडे रखकर भोजन बनेगा!' उल्लासपूर्वक उन्होंने कहा—'मैंने पिछले पूरे एक 'लेकिन घरमें और लोग भी हैं।' महेशने आपत्ति महीनेसे कोई ओषधि नहीं खायी है। अब विश्वास हुआ की—'बाहरके अतिथि भी आया ही करते हैं।' है कि मैं ओषधिसेवनके बिना भी जीवित रह सकता हूँ।' 'अब भी बहुत कुछ करना शेष है।' मैंने उनसे 'इस भ्रमको मनसे निकाल दो कि मिर्च-मसाला, कहा—'मैं मानता हूँ कि भोजन तथा वस्त्रकी सादगी ही अचार-चटनी तथा मिठाईके बिना भोजन रुचिकर नहीं होता। तुम्हारे-जैसी ही रुचि दूसरोंकी भी है और तुम सम्पूर्ण सादगी नहीं है। आडम्बरपूर्ण वाणीका भी त्याग देखते ही हो कि यह भोजन तुम्हें प्रिय लगा है।' मैंने होना चाहिये। साथ ही व्यवहारमें भी सहजता-सरलता समझाया—'मक्खन और घी अपने यहाँ चलने दो; किंतु होनी चाहिये। मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहे बिना शारीरिक कम कर दो। खटाई-मिर्च जो चाहें, उन्हें देनेकी स्वास्थ्य उत्तम नहीं रह सकता और मानसिक स्वास्थ्य उत्तम व्यवस्था रखो। मेवे तथा फल बढा दो भोजनमें। फलत: रहे, इसके लिये व्यवहार तथा वाणीमें सादगी अपेक्षित है।' किसीको तुम्हें दरिद्र या कृपण कहनेका अवकाश नहीं 'आपका यह तीसरा पाठ बहुत कठिन है' वे रहेगा। तुम इसी अयशसे तो घबरा रहे हो।' हँसकर बोले—'लेकिन यह अन्तिम पाठ है न?' 'मुझे बाहर मित्रोंके यहाँ जाना पड़ता है।' महेशने वे ऐसी भाषा बोलते हैं, जैसी भाषा साहित्यिक यह कठिनाई ठीक ही सूचित की। निबन्धोंमें लिखी जाती है। शुद्ध हिंदीका आग्रह उन्हें 'जहाँतक सम्भव हो, ऐसी गोष्ठियोंसे बचो!' नहीं है। अरबी, फारसी, अंग्रेजीके शब्दोंकी भरमार मध्यम मार्ग ही निकालना आवश्यक था। 'अवसर रहती है संस्कृत शब्दोंके साथ; किंतु बोलनेकी शैली, आनेपर चाय, काफी तथा शीतल पेय कम-से-कम लो। स्वरोंके उच्चारण, अंग तथा हाथ-पैरका संचालन सब जहाँतक सम्भव हो, नहीं लो तो अच्छा। भोजन ही अद्भुत एवं नाटकीय। उनके व्यवहारमें भी लखनऊके करना पडे तो थोडा खाकर, मिर्च-मसालेके पदार्थ पुराने नवाबोंका आडम्बर झलका करता है। अत: अपना छोड़कर, कुछ भूखे पेट उठनेमें हानि नहीं है। पेटको उस पूरा स्वभाव बदलना उन्हें कठिन लगना ही था। समय या पीछे भी फल खाकर भर ले सकते हो।' 'केवल एक पाठ' और मैंने भी हँसकर ही कहा—'लेकिन उसके लिये इस बार आपको मेरे साथ 'मैं प्रयत्न करूँगा!' विदा होते समय महेश केवल इतना कह गये थे। उनके स्वरमें उत्साह नहीं था। मैंने व्रजकी यात्रा करनी है।' उन्हें कोई ओषधि नहीं बतलायी थी। जो व्यक्ति देशके एक दो मंजिलका छोटा मकान था वह, जिसमें सुयोग्य चिकित्सकोंका उपचार कर चुका हो, उसे ओषधि बतलानेकी भूल करनेसे मैं प्राय: बचा हूँ; हम लोगोंने प्रवेश किया। वृन्दावनके एक साधुको मैं क्योंकि ऐसी अवस्थामें दोष कहीं ऐसे स्थानपर होता है, अपने साथ ले आया था; क्योंकि वे व्रजके स्थलोंसे जहाँ चिकित्सा-सिद्धान्त सामान्यतः संकेत नहीं करते। परिचित थे। महेश भी इस बार व्रजयात्रामें मेरे साथ थे। 'भाई साहब!' महेश मुझे केवल दो महीने बाद एक दुर्बल देह, श्यामवर्ण, श्वेतकेश वृद्ध चटाईपर मिले और बहुत प्रसन्न दिखायी पड़े। उनके शरीरपर इस बैठे मिले उस मकानके ऊपरके कमरेमें। मस्तक तथा बार हिमश्वेत धोती-कुर्ता था तथा पैरोंमें चप्पल। दाढीके केश सम्भवत: पन्द्रह दिनके बडे थे। शरीरपर बगलबन्दी और कटिमें एक वस्त्रखण्ड। वस्त्र स्वच्छ थे; उल्लासपूर्वक उन्होंने बतलाया—'आपकी सादगीके दोनों पार्टि । प्रति पहिला क्रिक्ट प्रति द्वार क्रिक्ट क्ष्म क्रिक्ट क्षेत्र क्ष्म संख्या ३ ] सादगी जितनी सफेदी हो सकती है, उतनी उनमें थी। कमरेमें टुकड़े तथा कुछ शाकके टुकड़े भी डाले गये थे। चारों ओर पुस्तकें फैली हुई थीं। 'भाई साहब! भोजन इतना स्वादिष्ट भी हो सकता 'नीचे नारायणजी थे?' मेरे साथके साधुने पूछा। है, यह बात आज ही समझमें आयी है।' महेशने मेरे 'हाँ, उसे विलायत जाना है। इसलिये मैंने छ: महीनेके पास खिसककर धीरेसे कानमें फुसफुसाते हुए कहा। लिये अपने पास बुला लिया है।' उन्होंने बताया—' वहाँके 'किंतु तुम और रोटी नहीं पा सकते।' महेशको मैंने कृत्रिम तथा विलासी जीवनमें सुरक्षित रह सके, इतना मना किया; किंतु स्वयं मेरी इच्छा थी कि यहाँ भरपेट अभ्यास यहाँ छ: महीने रहनेपर उसे हो जायगा।' भोजन करनेकी बात साधुने अस्वीकार करके ठीक नहीं विशेष पूछनेपर पता लगा कि नारायण उनके पुत्रका किया। लेकिन इस तपस्वी ब्राह्मण-परिवारको भूखे भी नाम है। इस वर्ष एक विश्वविद्यालयमें विज्ञानसे परास्नातक तो नहीं रखना था। क्या पता कि उनके घर और आटा करनेमें उन्होंने सर्वोच्चताके अंक प्राप्त किये हैं। देशकी होगा भी या नहीं, क्योंकि जिस घरमें प्रत्येक सदस्यको सरकारने विशेष प्रशिक्षणके लिये इंगलैण्ड भेजना स्वीकार तीन लाख नाम-जप प्रतिदिन दैनिक कार्य करते हुए भी किया है उन्हें और सरकारके व्ययपर उन्हें जाना है। करना ही पडता है, उस घरमें अधिक आटा पीस लेनेका अवकाश कैसे मिल सकता होगा? आटा तो घरके सपत्नीक वे जायँगे। अत: यहाँ पिताके पास सपत्नीक संयम तथा सादगीका प्रशिक्षण प्राप्त करने आये हैं। सदस्योंका पीसा ही काममें वहाँ आता है। घुटा सिर, बड़ी-सी चुटिया, घुटनोंसे ऊपरतक ही 'मनमें संसारसे वैराग्य कैसे हो ?' भोजनके पश्चात् कटिवस्त्र, मटमैली बगलबंदी-इस वेशमें एक स्वस्थ चलते-चलते साधुने अकस्मात् पण्डितजीसे पूछ लिया। सबल युवक हमें इस भवनमें प्रवेश करते ही मिला था। 'मेरे एक सम्बन्धीको मिठाई बहुत प्रिय लगती वह उसी समय एक बडे टोकरेभर घास छीलकर लाया थी। उन्हें मधुमेह हो गया।' पण्डितजीने बताया— था और कुट्टी काटनेकी तैयारीमें था। मैं चौंक गया, 'चिकित्सकोंने समझा दिया कि मीठी वस्तुका सर्वथा जब मुझे बताया गया कि वही युवक नारायणजी थे। त्याग किये बिना रोग नहीं जायगा। रोग बना रहा तो साथ ही यह भी पता लगा कि नारायणजीकी पत्नी नीचे फोड़े निकलने प्रारम्भ होंगे। बहुत कष्ट होगा। उनकी चीनी ही नहीं, आलू, चावल आदि भी छूट गये। चक्की चला रही हैं। हमलोग देरतक बैठे रहे। चलनेसे पहले ही पूछा संसारके विषय दु:ख देंगे-यह ठीक समझमें आ जाय तो वैराग्य अपने-आप हो जायगा! ऐसा न हो, तबतक गया—'भोजन करेंगे आपलोग?' भोजन तो नहीं करेंगे। उन साधने ही कहा—'किंत् विवेक-विचार तथा प्रार्थनाका ही सहारा है।' बुआजीके हाथकी रोटीका एक-एक टुकड़ा प्रसाद-'प्रार्थना कैसे की जाय?' महेशने पूछा। स्वरूप अवश्य लेंगे।' 'भगवान् पराये तो हैं नहीं कि उनसे कुछ कहनेके उन पण्डितजीके साथ उनकी वृद्धा बहन भी रहती लिये नियम-पालन करना पड़े।' पण्डितजीने समझाया— हैं। उन वृद्धाको ही साधुने 'बुआजी' कहा था। 'वे अपने हैं। जैसे आप अपने लोगोंसे कुछ कहते हैं, हमलोगोंको एक-एक रोटी और थोड़ी-थोड़ी दाल उनसे कह लीजिये और जिह्वाको नाम-जपमें लगाये रहिये।' (यदि उसे दाल कहा जा सके) दी गयी। गेहूँ, चना, 'भाई साहब! आज सत्ययुगके एक ऋषि-परिवारका जौ, चावलके कण, दालके कण आदि पता नहीं कितने दर्शन आपने करा दिया।' प्रणाम करके उस भवनसे बाहर अन्नोंके मिश्रित आटेकी वह रोटी थी और दाल-उस आते ही भरे स्वरमें महेश बोले—'सादगीका यह आदर्श चार-पाँच व्यक्तियोंके परिवारके लिये ढाई तोले दाल धन्य है; किंतु भाई साहब! इस लक्ष्यको आदर्श मानकर बनायी जाती थी। दालमें पानी ही था गरमा-गरम, किंतु केवल प्रयत्न कर सकूँ तो भी जीवनको धन्य मानूँगा। इसे उसमें हल्दी, नमकके अतिरिक्त हर्र, आँवला, पीपलके अपना लेनेकी कल्पना भी अभी तो कठिन ही लगती है।

मूर्ति या छिबमें भगवान् ( रायसाहेब श्रीकृष्णलालजी बाफणा ) मूर्तिमें या छिबमें भगवान् अथवा भगवद्-विभूतिका इसी तरह मूर्ति या छिबमें पूजनद्वारा ईश्वरीय विभूति होना श्रद्धालुओंके लिये तो सहजमें ही माननीय है, किंतु जाग्रत्, एकत्रित एवं संगठित होकर प्रकट हो सकती है। मूर्ति या छिब ईश्वरीय विभूतिका विग्रहरूप धारणकर व्यक्ति-विशेषके आकारमें प्रकट होनेका चिह्न ही तो है।

तर्क-बुद्धिवाले उसे मान लें, यह सहज नहीं। और यदि ऐसा मान भी लें तो भगवान्के इतने सुलभ होनेपर हमारी कामना उनके द्वारा तुरंत पूर्ण नहीं होती, इसका कारण क्या होगा-नया तर्क खडा हो जाता है। मैं अपनी अल्प बुद्धिद्वारा वैज्ञानिक रीतिसे समझानेकी चेष्टा करूँगा कि मूर्ति एवं छिबयोंमें भगवद्-विभृति किस तरह रहती है और उनसे हमारी कामनाएँ कैसे पूर्ण होती हैं और क्यों अपूर्ण रहती हैं। मानव-विज्ञान मनुष्यके इन्द्रियजनित ज्ञानपर निर्भर है। इसका अर्थ दूसरे शब्दोंमें यह हुआ कि वास्तवमें संसारके पदार्थ कुछ नहीं हैं; मनुष्यको एक अज्ञात-शक्तिद्वारा जैसा उसकी इन्द्रियाँ ज्ञान दिखाती हैं, वैसा

ही वह जगत्को मानता है। मनुष्यमें जो चेतना है, वही अपने संकल्पके अनुरूप होकर सामने आती है। इसीसे कहा जाता है कि जैसा तुम विचार करोगे, वैसे ही तुम बन जाओगे—अपनेको खुदा मानोगे तो खुदा बन जाओगे। ठीक है—जो आदमी अपनेको उत्तम मानता है, वह कार्य भी उत्तम ही करेगा और उन कार्योंके संस्कारों एवं प्रभावोंसे वह उत्तम ही होता जायगा। इससे सिद्ध यह हुआ कि मूर्ति अथवा छिबमें जब हम भगवान्की भावना करते हैं, तब वह छिब या मूर्ति

भगवान् ही हो जाती है। दूसरी बात यह है कि ईश्वरका ऐश्वर्य यह तकाजा करता है कि उसे सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् होना चाहिये; तभी वह सत्-चित् और आनन्दमय हो सकेगा। जब वह ऐसा हो तो मूर्ति एवं छिबमें भी वह स्वत: विद्यमान होगा ही। उसकी व्यापकता खण्डरूपसे तो है नहीं, वह तो आकाशवत् परिपूर्ण है; तब मूर्ति अथवा छिब उससे शून्य कैसे हो सकती है? तीसरे, ईश्वरीय शक्ति या विभृति जगत्के समस्त

द्रव्यों एवं पदार्थोंमें अंशरूपसे ही सही, निहित है; जैसे

काष्ठमें अग्नि। वह अग्नि मन्थनसे प्रकट हो जाती है।

रहता ही है और सूर्यकी रिंमयोंद्वारा उठता ही रहता है; किंतु तेज घाम जलको ऊपर खींचनेमें उत्तेजना देता है, जिससे हवामें जलकी मात्रा बढ़कर वर्षामें वृद्धि होती है, इसी तरह आराधना या पूजा-पाठसे भगवद्-विभूति, जो सामान्य रीतिसे सर्वत्र विद्यमान है, वृद्धिको प्राप्त होकर विशेष रूप धारण कर लेती है। उपर्युक्त विवेचनसे मूर्तियों एवं छिबयोंमें भगवद्-विभूतिका विद्यमान होना बताया गया। पाठकोंको कदाचित् वह सुसंगत प्रतीत हुआ होगा, किंतु जबतक वे मूर्तिया एवं छिबयाँ प्रतिष्ठित नहीं होतीं, अर्थात् जबतक पूजा एवं आराधनाके द्वारा उनमें भगवद्-आवेश नहीं कराया जाता तबतक उनमें भगवत्सत्ता गौण रूपसे—सामान्य रूपसे रहती है। अब रहा यह सवाल

कि जब मूर्तियों एवं छिबयोंमें भगवद्-आवेश हो गया,

तब तो वे हमारी कामना अवश्य ही पूर्ण कर सकती हैं।

फिर भी वे ऐसा क्यों नहीं करतीं? इसका उत्तर यही

है कि उनके भगवत्स्वरूप होनेके विषयमें हमारी धारणा परिपक्व नहीं होती। जब हमारा संकल्प ही इच्छित रूप

धारण करता है, तो उस संकल्पमें जबतक कचाई

(कच्चापन) रहेगी, तबतक उसके अनुरूप क्रिया होनेमें

भी त्रुटि रहेगी। दूसरी बात यह है कि जबतक हमारा

संघर्षण अधूरा रहेगा, उसका फल ईश्वरीय विभूतिका

प्राकट्य सांगोपांग कैसे होगा? तीव्र रगड्से ही तो आग

सुतरां जैसे मालाबार या महाबलेश्वर समुद्रके निकट

होनेसे समुद्री हवा अर्थात् बरसाती हवाका केन्द्र है,

जिससे वहाँ वर्षा ज्यादा होती है, उसी तरह मूर्ति या

छिब भगवद्-विभूतिके पुंजका चिन्ह होनेसे उससे

सम्बन्धित होती है और उसमें भगवद्-विभूतिका आविर्भाव

चौथे, जैसे जल, यों तो हवामें सर्वत्र विद्यमान

विशेष मात्रामें होता है।

िभाग ९२

प्रकट होती है। तीसरे, सारा वातावरण जबतक अनुकूल नहीं होगा, ईश्वरीय विभूतिका पूरा प्रादुर्भाव कैसे होगा? चौथे, आह्वान जबतक ठीक नहीं होगा अर्थात् श्रद्धा-

विश्वाससहित पूजा-पाठ, आराधन नहीं होगा तबतक भगवद्-आवेश पूर्ण रूपसे कैसे होगा? सुतरां जब

भगवद्-विभूतिका प्राकट्य या प्रादुर्भाव ही उचित मात्रामें नहीं होगा तब हमारी कामना उससे कैसे पूर्ण होगी ? मूर्ति एवं छिबमें प्रतिष्ठासे भगवद्-अंश तो आ

जाता है, लेकिन हमको इच्छित फल देनेवाली शक्तिका आविर्भाव तो हमारे उचित परिश्रमसे ही होगा। मन्थन बिना घृत निकलेगा क्योंकर? दूधमें घृत रहता ही है, पर वह निकलेगा मन्थनसे। एक फकत मैं ही तेरी तसवीरका शायक नहीं। सारी दुनिया प्यार करती है तेरी तसवीरको॥

सबमें मैंने तुझको पाया, और तेरी तसवीरको॥ किसने देखा है तुझे? देखा है तेरे हुस्नको। उसने देखा है तुझे, देखा तेरी तसवीरको॥ तेरे मिलनेकी न कुछ तदबीर हमसे बन पड़ी। ओ सितमगर! खुदनुमाया दिलके आइनेमें देख।

दिलमें भी खिंचवा रखा हमने तेरी तसवीरको॥

सैकड़ों तसवीर देखी हैं हसीनोंने जहाँ।

जलवा गर जलवा तेरा फैला तेरी तसवीरसे। दीनो-दुनिया क्यों न फिर कह दें तेरी तसवीरको॥ ध्यान और अनुराग होंगे प्राप्त ही तसवीरसे। क्यों नहीं मानूँ मैं रहबर! फिर तेरी तसवीरको॥ है मुसब्बिर कौन जो खींचे भला खाका तेरा। तेरी ताकत ही तो खिंचवाती तेरी तसवीरको॥ तेरी नूरानी तजल्ली सह नहीं सकता बशर। बस, यही काफी झुका दे सर तेरी तसवीरको॥ जायँगे फिल वाकई उसके सुधर दोनों जहाँ। एक समझेगा तुझे जो और तेरी तसवीरको॥ क्यों नहीं बेखुद हो वह, जिसने कि देखा हो तुझे। आफरी निकले जबाँसे जब तेरी तसवीरको॥ राम, शिव और कृष्ण तीनों हैं तेरी तसवीरमें। सत्य-शिव-सुन्दर न क्यों मानूँ तेरी तसवीरको॥

प्रेम, ज्ञान और कर्मके आदर्शका दर्शन कहूँ।

सत-चित-आनन्ददाता या तेरी तसवीरको॥

चाह इतनी-सी मुझे है अब तो ऐ मेरे प्रभो!

तू मुझे देखा करे और मैं तेरी तसवीरको॥

हार कर हमने लिया करमें तेरी तसवीरको॥

तेरी सूरतका बना बुत, हमने है सिजदा किया।

बख्श दी तूने बड़ाई जब तेरी तसवीरको॥

(गिरधर कविराय)

कीजिये, दौलत सपनेहुमें अभिमान। \*\* पाय न \* \* ठाँव चंचल दिन चारिको. निदान॥ जल न रहत \* निदान, जियत ठाँव जगमें लीजै। \* रहत यश \* \* मीठे विनय सबहीसों कीजै॥ वचन सुनाय, \* \* \* \* कविराय, गिरधर अरे तौलत। कह यह सब घट \* \* निशिदिन सबहीके दौलत॥ पाहुन चार, रहत \* \* 樂 \* बाढ़ै नावमें, पानी घरमें बाढ़ै दाम। \* \* दोनों उलीचिये. यही सयानो हाथ काम॥ \* \* 樂樂 \* यही रामको सुमिरन कीजै। सयानो काम \* \* शीश धरि दीजै॥ परस्वारथके आगे काज 欒 \* \* बड़ेनकी कविराय याही बानी। कह गिरधर \* \* राखिये पानी॥ चलिये अपनो सुचाल \* चाल

स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी सरस्वती संत-चरित ( महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण )

[ उन्नीसवीं शताब्दीमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीके नामसे दो महापुरुषोंका आविर्भाव हुआ। यहाँ जिनके विषयमें लेख प्रकाशित हुआ है, उनका जन्म उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुआ था। आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द

सरस्वतीसे काशीमें जो शास्त्रार्थ हुआ, उसमें सनातनधर्मकी ओरसे आप समुपस्थित थे। महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी

परिव्राजकाचार्य श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीने सन् १८९८ ई० के वैशाखमासमें अहल्याबाईघाटपर अपने आश्रममें ८२ वर्षकी वयस्में भौतिक देहका

वाराणसीधामके सुप्रसिद्ध दण्डी स्वामी परमहंस

परित्यागकर निर्वाण प्राप्त किया था। उनके वेदान्तशास्त्रके अगाध पाण्डित्यकी प्रशंसा आज भी समस्त भारतके विद्वान् करते हैं। उनकी सर्वतोमुखी असाधारण प्रतिभाकी बातें वृद्ध विद्वानोंसे सुनकर शिक्षित युवक विस्मित हो

जाते हैं। उनके आध्यात्मिक जीवनमें ऐसी अनेकों आश्चर्यमयी घटनाएँ हैं, जिनकी आलोचना करनेसे हिन्दुमात्रके आध्यात्मिक जीवनमें नवीन प्रकाशकी किरणें

प्रसारित होंगी और भारतीय प्राचीन साध्-महात्माओंके प्रति श्रद्धा-भक्ति बढ़ेगी। कल्याणके पाठकोंके हितार्थ

इन्हींके शिष्य थे। दूसरे परमहंस स्वामी विशुद्धानन्दजीका जन्म उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें हुआ था। वे सूर्यविज्ञानप्रणेताके रूपमें प्रसिद्ध हुए। इनके प्रसिद्ध शिष्य महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज हुए।—सम्पादक ]

> तीन-साढे तीन बजेतक मेरा पाठ चलता। एक दिन वर्षाकालमें श्रावणके अन्तमें लगभग तीन बजे मैं अध्ययन कर रहा था, उस समय बडे जोरोंसे वर्षा हो रही थी। अहल्याबाईघाटपर स्वामीजीका आश्रम था, उसमें ऊपरके

> चरणोंमें बैठकर पूर्व और उत्तरमीमांसा पढ़नेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ था। अध्ययन आरम्भ करनेके समय मेरी उम्र बीस वर्षकी थी। स्वाध्यायतिथियोंमें प्रतिदिन दोसे

> तल्लेमें एक छोटे घरमें स्वामीजी उत्तराभिमुख अपने आसनपर विराजमान थे। मैं पूर्वकी ओर मुँह करके बैठा था। सामने श्रावणकी पूर्णावयवा उत्तरवाहिनी भागीरथी अपनी कलकल ध्वनिसे अविश्रान्त वर्षाध्वनिसे मुखरित दिशाओंको प्रतिध्वनित करती हुई प्रवाहित हो रही थीं।

> हृदयस्थित ज्योत्स्नाद्वारा स्नात एक अननुभूतपूर्व समुज्ज्वल अध्यात्मज्योति विकसित हो रही थी, सामने द्रवब्रह्ममयी भागीरथीजी थीं। मेरे हाथमें छान्दोग्योपनिषद्की पुस्तक

> थी, स्वामीजी महाराज उसीकी व्याख्या कर रहे थे। वह

अपूर्व मनोहर दृश्य आज भी मेरे स्मृतिपटपर गाढ्रूपसे

स्वामीजी पद्मासनसे बैठे थे, उनके विशाल प्रशान्त नेत्रोंसे

अंकित है। छान्दोग्योपनिषद्के छठे अध्यायमें प्रयाणके समय दक्षिणमार्गकी गति उस दिनका पाठ्य विषय था— 'पुरुषश्सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते

जानासि मां जानासि मामिति। तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां

तावज्जानाति। अथ यदास्य वाङ्मनिस सम्पद्यते मनः प्राणे

सी सम्बन्धमें कुछ प्रत्यक्ष की हुई बातें लिखी जाती हैं । **प्राणस्तेजिस तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ।'** Hin<del>gluismg Dispat</del>d<del>, Sexunt https://dks.</del>.gg/ghaharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha इसी सम्बन्धमें कुछ प्रत्यक्ष की हुई बातें लिखी जाती हैं।

संख्या ३ ] स्वामी श्रीविशुद	द्रानन्दजी सरस्वती ३९
**************************************	
अर्थात् मनुष्य जब मृत्युशय्यापर पड़ा हुआ	आज यहीं पाठ बन्द करो, तुम्हारा चेहरा देखकर
सन्तापको प्राप्त होता है, तब उसके घरके लोग उसके	मालूम होता है कि मैं तुम्हें जो कुछ कह रहा हूँ, वे
समीप आकर व्याकुलतासे पूछते हैं—'मुझको पहचानते	सब बातें सत्यपर प्रतिष्ठित हैं या नहीं, तुम्हारे मनके
हो क्या ? मुझे पहचान गये ?' इत्यादि। उसकी बहिरिन्द्रिय	इस सन्देहने तुम्हारे चित्तको श्रद्धाहीन कर दिया है।
जबतक मनमें नहीं मिल जाती, मन प्राणमें विलीन नहीं	जिसके मनमें श्रद्धा नहीं है, उसके लिये इन बातोंका न
हो जाता, प्राण तेजोधातुमें परिणत नहीं हो जाते और तेज	सुनना ही अच्छा है और कहनेवालेके लिये भी यह
भी पर-देवतामें प्रवेश नहीं कर जाता, तभीतक वह उन	विडम्बनामात्र है।'
लोगोंको पहचान सकता है। जब बहिरिन्द्रिय मनमें मिल	पूज्य स्वामीजीके मुखसे ऐसी कड़ी बातें मैंने इससे
जाती है, मन प्राणोंमें विलीन हो जाता है, प्राण	पहले कभी नहीं सुनी थीं। इन बातोंको सुनकर मुझे बड़ा
तेजोधातुमें परिणत हो जाते हैं और अन्तमें जब तेज भी	दु:ख हुआ, भैंने जल्दीसे उठकर उनके चरणोंपर गिरकर
पर-देवतामें प्रविष्ट हो जाता है, तब वह किसीको भी	भक्तिभावसे अश्रुसिक्त नेत्रोंसे प्रणाम किया और कहा—
नहीं पहचान सकता, उसका ज्ञान विलुप्त हो जाता है,	'गुरुदेव! मैं अज्ञ हूँ, मेरे इस अज्ञानकृत प्रथम अपराधको
यही उसका मरण है।	आप यदि क्षमा नहीं करेंगे तो मेरा जीवित रहना भी
इस प्रसंगमें स्वामीजी उस दिन देवयान या उत्तरमार्गकी	विडम्बनामात्र है।' मेरे इन शब्दोंको सुनकर स्वामीजी
बात चलाकर कहने लगे—'जो योगी है, उसका प्रयाण	बहुत देरतक गम्भीरतासे चुपचाप बैठे रहे, फिर बहुत
इस तरह नहीं होता। प्रत्येक मनुष्यके हृदयकमलके ऊपर	धीरेसे मेरी ओर देखकर कहने लगे—'अच्छी बात है,
कुछ सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं, इन नाड़ियोंको सिता कहते हैं,	मैंने क्षमा किया। इस प्रसंगमें मैं तुमसे कुछ कहना
इनमें किसीका वर्ण लाल है, किसीका पीला आदि है।	चाहता हूँ, खूब ध्यान देकर सुनो।' स्वामीजीके इन
ये नाड़ियाँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं, यहाँतक कि केशके सौवें	शब्दोंसे आश्वस्त होकर मैं अपनी जगह हाथ जोड़े बैठा
भागके समान इनकी सूक्ष्मता है। इन सूक्ष्म नाड़ियोंमें	हुआ उनके चेहरेकी ओर देखने लगा और बड़े आग्रहके
एकका नाम है सुषुम्ना। यह सुषुम्ना ऊर्ध्वमें ब्रह्मरन्ध्रतक	साथ उनकी बातें सुननेके लिये उत्सुकतासे बाट देखने
गयी है। इस सुषुम्नामें योगबलसे अपना प्रवेश कराकर	लगा। कुछ देर बाद स्वामीजी कहने लगे—
जो योगी प्रयाण करता है, वह फिर लौटकर इस संसारमें	'आजकल ज्यों–ज्यों पाश्चात्य शिक्षाका प्रभाव
नहीं आता। ब्रह्मलोकमें उसकी गति होती है और	बढ़ रहा है, त्यों-त्यों संस्कृतशिक्षापद्धतिका प्रचुर रूपमें
कल्पान्तके समय ब्रह्मलोकके अधिष्ठाता सगुण ब्रह्मके	ह्रास हो रहा है। अध्यात्मशास्त्रके प्रति लोगोंकी अश्रद्धा
साथ वह निर्वाणको प्राप्त होता है।' सनातनधर्मकी इन	होना इसीका परिणाम है। परन्तु यह अश्रद्धा ही हिन्दू-
आध्यात्मिक बातोंको पूज्यपाद स्वामीजी महाराज उस	समाजका सर्वनाश कर रही है, इस बातको याद रखना।
दिन बड़ी ही स्फूर्तिके साथ—बड़े ही अभिनिवेश और	मैं जो तुम्हें सुषुम्ना नाड़ीद्वारा उत्क्रमणकी बात कह रहा
उत्साहके साथ कह रहे थे। किंतु न मालूम क्यों, मेरे	था, यह कोई कविकल्पना या धर्मोन्मादना नहीं है, ध्रुव
मनमें वे बातें मानो उस दिन गम्भीरताके साथ प्रवेश नहीं	सत्य है। इसकी ध्रुव सत्यताका मैंने निजमें अनुभव किया
कर रही थीं, मेरी बेजानकारीमें शायद गुरुदेव स्वामीजी	है; और स्वयं जाना है तथा विश्वास किया है, इसीसे
महाराजने मेरे चेहरेको या मेरी अन्य किसी शारीरिक	तुमसे कह रहा था। तुम देखते हो, मैं प्रतिदिन प्रात:काल
चेष्टाको देखकर मेरी अन्यमनस्कताकी बातको जान	स्नानके बाद आठ बजेके समय इस घरमें प्रवेश करके
लिया और बड़ी रुखाईके साथ जरा उत्तेजित-से होकर	सब दरवाजोंको बन्द करके दोपहरतक बैठता हूँ। इन
मेरी ओर देखकर कम्पित स्वरसे बोले—'प्रमथनाथ!	चार घण्टोंमें मुझसे कोई भी मिल नहीं सकता, यहाँतक

भाग ९२ कि इस घरकी तरफ किसीके आनेका भी अधिकार नहीं करना, मुझको तंग न करना, किसी वैद्यको न बुलाना, मुझे स्थिर रूपसे बैठे रहने देना, मैं कुछ कहूँ तो वही है, जानते हो उस समय मैं रोज क्या करता हूँ ? आज बीस वर्षसे भी अधिक काल हो गया, मैं योगप्रक्रियाके करना, अपनी इच्छासे कुछ भी करके मेरे चित्तमें विक्षेप अनुसार सुषुम्नाके द्वारा उत्क्रान्तिके मार्गका अनुसन्धान न करना।' इतना कहकर स्वामीजी बद्धपद्मासन लगाकर कर रहा हूँ। सुनो प्रमथनाथ! इतने परिश्रमका मेरा यह बैठ गये और ध्यानस्थ हो गये। दूसरा दिन भी इसी तरह अनुसन्धान व्यर्थ नहीं गया। मैंने इस पथको पा लिया बीत गया। तीसरे दिन ठीक मध्याह्नकालमें उसी तरह है। कल्पनाकी दृष्टिसे नहीं, सचमुच यह मेरे हस्तगत हो बद्धपद्मासनसे बैठे-बैठे, हँसते-हँसते उत्तरवाहिनी गया है। याद रखना, कुछ समय बाद उत्तरायणके त्रिलोकपावनी भगवती भागीरथीको देखते-देखते वैशाख शुक्लपक्षमें मैं इसी तरह सदाकी भाँति बद्धपद्मासन सुषुम्नारन्ध्रको भेदकर परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी लगाये द्रवब्रह्ममयी भगवती भागीरथीको देखते-देखते, श्रीविशुद्धानन्द सरस्वतीने उत्तर पथसे पुनरावृत्तिहीन हँसते-हँसते, प्रशान्त-चित्तसे भौतिक देहको त्यागकर महाप्रयाण किया। उनके महाप्रयाणकी बात तुरंत सारी अमृतधाममें चला जाऊँगा।' काशीमें फैल गयी। हजारों नर-नारी आबाल-वृद्ध इनता कहकर स्वामीजी चुप हो गये। कुछ देर बाद स्वामीजीके गतप्राण पुण्यदेहका दर्शन करके जीवन धन्य फिर बोले—'आज पढ़ाई नहीं होगी, अब तुम घर करनेके लिये दौड़ आये। सबने देखा, बद्धपद्मासनसे जाओ। तुम्हारा उपनिषद्-पाठ कुछ समयके लिये बन्द विराजमान वर्तमान युगके सर्वश्रेष्ठ संन्यासी, परम ज्ञानी, रहेगा। कलसे मैं तुम्हें वेदान्तशास्त्रके सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ परम विरक्त स्वामीजीका वही ललाई लिये सुन्दर गौर विग्रह है, मुखपर वही स्मित ज्योत्स्ना खेल रही है, और अद्वैतसिद्धिको पढाऊँगा।' इसके बाद मैं विस्मयाविष्ट चित्तसे कॉॅंपते हुए भक्तिभावसे श्रीस्वामीजीके चरणकमलोंमें नेत्र अर्धनिमीलित हैं। प्राण निकल गये हैं, परंतु दैवी सिर नवाकर प्रणाम करके घर चला आया। सुषमा अब भी उस सर्वांग सुन्दर देहको त्याग करनेमें इस उत्तरमार्गसे प्रयाणके सम्बन्धमें स्वामीजीने मानो संकोच कर रही है। तत्कालीन काशिराज महाराज और कभी कोई संकेत नहीं किया। दूसरे दिनसे मैं प्रभुनारायणसिंहजी स्वामीजीके परम भक्त थे। समाचार 'अद्वैतसिद्धि' पढ्ने लगा। इस घटनाके पाँच वर्ष बाद सुनते ही वे दौड़े आये और उन्होंने उस समयका एक मेरी कलकत्तेके गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेजमें धर्मशास्त्रके छायाचित्र लिया था। पता लगानेपर काशीकी किसी अध्यापक पदपर नियुक्ति हो गयी, इससे बाध्य होकर चित्रशालामें वह चित्र मिल सकता है। मुझे काशीधाम छोड्ना पड़ा। स्वामीजीसे अध्ययन परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत्स्वामी विशुद्धानन्दजी करना भी समाप्त हो गया। सन् १८९७ ई० के नवम्बर महाराजके विस्मयजनक महाप्रयाणका यह आँखोंदेखा महीनेसे मैं संस्कृत कॉलेजमें अध्यापन-कार्य करने लगा। वर्णन है। उन्होंने मुझे दीर्घकालतक चरणसेवा करनेका अधिकार दया करके दिया था। मैंने अपनी आँखोंसे जो सन् १८९८ ई० के वैशाख महीनेमें स्वामीजीने भौतिक देहका त्याग कर दिया। देहत्यागके दिनसे तीन दिन कुछ देखा है और उनके मुँहसे सुना है, उसीको यहाँ पहले सन्ध्याको घूमकर आश्रममें आनेपर आपने कहा— लिखा है। मेरा विश्वास है कि जो इसपर ध्यान देंगे, वे 'देवीप्रसाद! (ये स्वामीजीके सर्वापेक्षा घनिष्ठ सेवक भारतीय अध्यात्मविज्ञानसम्पन्न साध्-महात्माओंके पुण्य एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे) मेरा शरीर आज कुछ चरित्रके प्रति विशेष श्रद्धासम्पन्न हो सकेंगे और शिथिल-सा मालूम होता है। तुम लोग घबराना नहीं। वैराग्यप्रधान सनातनधर्मके प्रति उनकी गाढ अनुरक्ति परसों मेरे महाप्रस्थानका दिन है; व्यर्थ हो-हल्ला न होगी।

गंख्या ३ ] गोमूत्रसे कैंसरका सफल इलाज						
**************************************	**************************************					
गोमूत्रसे कैंसरका सफल इलाज						
्र ( श्रीउमेशजी पोरवाल )						
कैंसर हमारे देशमें बहुत तेजीसे बढ़ रहा है। हर	कि ये अपना ही आदमी है ? इतना कष्ट क्यों दे रहे हो					
साल लाखों लोग कैंसरसे मर रहे हैं और सभी डॉक्टर्स	उसको ? सिर्फ इसलिये कि आपको एक अहंकार है कि					
हथियार डाल चुके हैं। प्राकृतिक चिकित्साके प्रबल	आपके पास बहुत पैसा है तो आप उपचार कराके ही					
समर्थक स्वर्गीय राजीव दीक्षितजी कहा करते थे—याद	मानेंगे? आप सोचते होंगे कि यदि हम उपचार नहीं					
रखना कि कैंसरके मरीजोंकी कैंसरसे मृत्यु नहीं होती,	·					
जो उपचार उन्हें दिया जाता है, उससे मृत्यु सबसे	आस-पड़ोसकी बातें ज्यादा मत सुनिये।					
अधिक होती है।	हो सकता है कई बार ये Innocently कहते हों,					
माने कैंसरसे ज्यादा खतरनाक कैंसरका उपचार	उनका Intention खराब नहीं होता हो, लेकिन उनको					
है। उपचार कैसा? आप सभी जानते हैं''' कीमोथैरेपी	ज्ञान कुछ भी नहीं है, बिना ज्ञानके वे सुझाव-पर-सुझाव					
दे दिया, रेडियोथैरपी दे दिया। इसमें क्या होता है कि	देते जाते हैं और कई बार अच्छा खासा पढ़ा-लिखा					
शरीरकी जो प्रतिरक्षक शक्ति है, वह बिलकुल खत्म हो	आदमी भी फँसता है, उसीमें रोगीको भी गवाँता है, पैसा					
जाती है। जब कीमोथैरेपी दी जाती है तो डॉक्टर कहते	भी जाता है।					
हैं कि हम कैंसरके सेलको मारना चाहते हैं, लेकिन होता	कैंसरके लिये क्या उपाय करें?					
क्या है? अच्छे सेल भी उसीके साथ मर जाते हैं।	हमारे घरमें कैंसरके लिये एक बहुत अच्छी दवा					
राजीव भाईके पास कीमोथैरेपी लेनेके बाद जो भी रोगी	हैअब डॉक्टरोंने भी मान लिया है, पहले तो वे मानते					
आया, वे उसे बचा नहीं पाये। लेकिन इसका उलटा	ही नहीं थे। दुनियामें एक ही दवा है Anti-Cancerous					
रिकार्ड है… उनके पास बिना कीमोथैरेपी लिये हुए जो	उसका नाम है—हल्दी। हल्दी कैंसर ठीक करनेकी					
भी रोगी आये दूसरी या तीसरी स्टेजतकके, वे एक भी	ताकत रखती है। कैसे ताकत रखती है, वह जान					
नहीं मरे।	लीजिये। हल्दीमें एक केमिकल है, उसका नाम है					
मतलब क्या है, इलाज लेनेमें जो खर्च आपने कर	कर्कुमिन (Carcumin) और यह ही कैंसर-कोशिका					
दिया, वह तो गया ही और रोगी भी आपके हाथसे गया।	(Cell)-को मार सकता है। बाकी कोई केमिकल					
डॉक्टर आपको भूलभुलैयामें रखता है, अभी छ: महीनेमें	दुनियामें नहीं बना और यह भी आदमीने नहीं भगवान्ने					
ठीक हो जायगा। आठ महीनेमें ठीक हो जायगा, लेकिन	बनाया है। हल्दी-जैसा ही कर्कुमिन और एक चीजमें					
अन्तमें वह मर ही जाता है। अगर किसीको कैंसर हो	है, वह है देशी गायके मूत्रमें। गोमूत्र माने देशी गायके					
जाये ज्यादा खर्च मत करिये; क्योंकि कीमोथैरेपी	शरीरसे निकला हुआ सीधा-साधा मूत्र, जिसे सूती					
लाभदायक नहीं होती, जो खर्च आप करेंगे, उससे	कपड़ेसे छानकर लिया गया हो। तो देशी गायका मूत्र					
मरीजको आराम नहीं मिलता बल्कि इतना कष्ट होता	अगर आपको मिल जाय और हल्दी आपके पास हो तो					
है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते।	आप कैंसरका इलाज आसानीसे कर पायेंगे।					
उसको जो टीके दिये जाते हैं, जो गोलियाँ खिलायी	अब देशी गायका मूत्र आधा कप और आधा					
जाती हैं, उससे उसके भौंहके बाल उड़ जाते हैं, उसको	चम्मच हल्दी दोनों मिलाकर गरम करना, जब उबाल					
जो कीमोथैरेपी दी जाती है, उससे सारे बाल झड़ जाते हैं,	आ जाये तो उसको ठंडा कर लेना। सामान्य तापमानमें					
चेहरा इतना डरावना लगता है कि पहचानमें नहीं आता	आनेके बाद रोगीको चायकी तरह पिलाना है'''चुस्कियाँ					

भाग ९२ ले-लेकर। एक और आयुर्वेदिक दवा है पुनर्नवा, आप ऐसा खाना खा रहे हैं और चावल भी छिलकेवाले जिसको अगर आधा चम्मच इसमें मिलायेंगे तो और खा रहे हैं तो बिलकुल निश्चिन्त रहिये, कैंसर होनेका अच्छा परिणाम आयेगा। जो आयुर्वेदकी दुकानमें पाउडर कोई चांस नहीं है। कैंसरके सबसे बड़े कारणोंमें दो-या छोटे-छोटे ट्कडोंमें मिलती है। याद रखें, इस दवामें तीन कारण और मुख्य हैं— सिर्फ देशी गायका मूत्र ही काममें आता है, विदेशी एक तो कारण है तम्बाकू, दूसरा है बीड़ी, गायका मुत्र कुछ काम नहीं आता। और जो देशी गाय तीसरा सिगरेट और चौथा है गुटका-इन चार चीजोंको तो कभी भी हाथ मत लगाइये; क्योंकि पूरे देशमें काले (श्याम) रंगकी हो, उसका मूत्र सबसे अच्छा परिणाम देता है। कैंसर ज्यादातर इन्हींके कारण है। कैंसरके बारेमें सारी दुनिया एक ही बात कहती है, चाहे वे डॉक्टर इस दवाको (देशी गायका मूत्र, हल्दी, पुनर्नवा) सही अनुपातमें मिलाकर उबालकर ठंडा करके काँचके हों या विशेषज्ञ सभी इससे बचाव ही इसका उपचार पात्रमें डाल करके रखिये, पर बोतलको कभी फ्रिजमें बताते हैं। महिलाओंको आजकल बहुत कैंसर हो रहा है। मत रखिये, धूपमें मत रखिये। यह दवा कैंसरके सेकेंड स्टेजमें और कभी-कभी थर्ड स्टेजमें भी बहुत गर्भाशयमें, स्तनोंमें यह काफी तेजीसे बढ रहा है। अच्छे परिणाम देती है। जब स्टेज थर्ड क्रास करके पहले Tumour होता है, फिर कैंसरमें Convert हो फोर्थमें पहुँच गया हो तब रिजल्टमें प्रॉबलम आती जाता है। ऐसेमें माताओं-बहनोंको क्या करना चाहिये, है और अगर आपने किसी रोगीको कीमोथैरेपी वगैरह जिससे जिन्दगीमें कभी Tumour न होने पाये। आपके दे दिया तो फिर इसका कोई असर नहीं होता। लिये सबसे अच्छा बचाव है कि जैसे ही आपको अगर कीमोथैरेपी स्टार्ट नहीं हुई है और उसने कोई अपने शरीरके किसी भी हिस्सेमें Unwanted Growth एलोपैथी उपचार शुरू नहीं किया तो आप देखेंगे रसौली, गाँठका पता चले तो जल्द ही आप सावधान हो जाइये। हालाँकि सभी गाँठ या सभी रसौली इसके चमत्कारिक (Miraculous) रिजल्ट आते हैं। इसमें एक सावधानी रखनी है कि गायका मूत्र लेते कैंसर नहीं होतीं, लेकिन आपको सावधान तो होना समय वह गर्भवती नहीं होनी चाहिये। गायकी जो ही पडेगा। माताओं-बहनोंको अगर कहीं भी गाँठ या रसौली हो गयी तो जल्दी-से-जल्दी इसे गलाना बछड़ी है, जो माँ नहीं बनी है, उसका मूत्र आप चाहिये और घोल देनेकी दुनियामें सबसे अच्छी दवा कभी भी प्रयोग कर सकते हैं। ये तो बात हुई कैंसरकी चिकित्साकी, पर जिन्दगीभर है चुना। वहीं जो पानमें खाया जाता है, जो पोताईमें कैंसर हो ही न, यह जानना और भी अच्छा है। उसके इस्तेमाल होता है। पानवालेकी दुकानसे चूना ले आइये, लिये एक चीज याद रिखये कि जो खाना खायें, उसमें इस चूनेको चनेके दानेके बराबर रोज खाइये। इसको वनस्पति घी या Refined Oil के स्थानपर हमेशा शुद्ध खानेका तरीका है पानीमें घोलकर पानी पी लीजिये, तेल खायें अर्थात् सरसों, नारियल, मूँगफलीका तेल दहीमें घोलकर दही पी लीजिये, लस्सीमें घोलकर खानेमें प्रयोग करें और घी अगर खाना है तो देशी लस्सी पी लीजिये, दालमें घोलकर दाल पी लीजिये, गायका शुद्ध घी ही खायें। दूसरे ये देख लीजिये कि सब्जीमें डालकर सब्जी खा लीजिये, पर ध्यान रहे जो भी खाना खा रहे हैं, उसमें छिलकेवाली दालें, पथरीके रोगीके लिये चुना वर्जित है। विमानेत्रात्री स्विज्याँ प्रचुर मात्रा में तहें या तहीं barma | MADE WITH LOVE के सम्पन्न ते के सार्थ के स्वार

साधनोपयोगी पत्र संख्या ३ ] साधनोपयोगी पत्र एक व्यक्ति एक वर्षके लिये वहाँका राजा बनाया जाता। (8) जीवनका उद्देश्य एक वर्षके बाद नदीके उस पार एक भीषण जंगलमें उसे प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका एक छोड़ दिया जाता। प्राय: नये-नये लोग प्रतिवर्ष गद्दीपर बैठाये जाते। वर्ष बीतनेपर वे रोते-बिलखते जंगलमें पत्र प्राप्त हुआ। आपने लिखा—'योगवासिष्ठ, रामायण, भागवत, पहुँचा दिये जाते। एक बार एक प्रौढ व्यक्तिकी बारी भक्तमाल, सेवा-अंक, श्रीमद्देवीभागवत, नरसिंहपुराण आयी, उसे एक वर्षके लिये वहाँका राजकाज सौंप दिया आदि कई ग्रन्थ पढ़े, लेकिन मेरे मानस-पटलपर कोई गया। वर्ष बीतनेपर जब उसे नौकाद्वारा उसपार भेजा जा असर नहीं हुआ।' आपने यह भी लिखा कि एक रहा था तो नाव चलानेवाले नाविकने उससे पूछा— दुष्टान्त देकर जीवन सफल होनेका आधार बतानेकी 'सरकार! प्रतिवर्ष जब हम यहाँसे समय पूरा होनेपर कृपा करें। राजाको पार ले जाते हैं तो वे रोते-बिलखते हुए जाते हैं, जबतक संसारके पदार्थीं, वस्तुओं एवं व्यक्तियोंमें परंतु आप तो हँसते-खेलते हुए जा रहे हैं, इसका क्या आसक्ति बनी रहती है, तबतक आध्यात्मिक बातोंका कारण है?' इसपर उस प्रौढ व्यक्तिने उत्तर दिया कि जो लोग रोते-बिलखते जाते हैं, वे लोग एक वर्षतक खूब असर मानस-पटलपर नहीं हो पाता। इसलिये इसी जीवनमें अपना कल्याण करनेके लिये जीवका एकमात्र आनन्द, सुख-भोग और आमोद-प्रमोदपूर्वक समय व्यतीत कर देते हैं। इसलिये उन्हें भविष्यकी भयावहताका उद्देश्य भगवत्प्राप्ति होना चाहिये, तभी सद्ग्रन्थोंमें बतायी गयी बातोंको अपने जीवनमें उतारा जा सकेगा। अनुमान होनेके कारण रोना पड़ता है, परंतु मैंने एक भगवान् शंकराचार्यने विवेकचुडामणिमें लिखा है वर्षतक सुख-भोग, आमोद-प्रमोद आदिमें समय नहीं कि तीन बातें अत्यन्त दुर्लभ हैं और वे भगवत्कृपा तथा बिताया बल्कि उसपार जहाँ जाना है, वहाँका जंगल साफ कराकर वहाँ प्रकाश, जल, फलादि एवं रहनेकी अन्य अपने पुण्य-पुंजोंसे प्राप्त होती हैं-सुविधाओंकी व्यवस्था करायी है। इसलिये अब मुझे वहाँ दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम्। महापुरुषसंश्रय:॥ रहनेमें कोई असुविधाका अनुभव नहीं होगा, इस कारण मैं मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं पहली बात है, मनुष्य-जन्म प्राप्त होना तथा प्रसन्नतापूर्वक जा रहा हूँ। मनुष्यत्वको प्राप्त करना; चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हम सभीके लिये यह एक प्रेरक दृष्टान्त है। इस प्राणी भगवत्कृपासे मनुष्य-जन्म प्राप्त करता है, मनुष्य-मनुष्यलोकमें रहते हुए हम सबको भी परलोकमें जन्म पाकर भी उसमें मनुष्यता होनी चाहिये, पशुता नहीं। आनन्दसे रहनेकी समुचित व्यवस्था कर लेनी चाहिये। दूसरी बात है मुमुक्षा अर्थात् इसी जन्ममें जन्म-दृष्टान्त तो बहुत हैं, परंतु उनकी शिक्षाको अमलमें मरणके बन्धनसे मुक्त होनेकी सुदृढ़ इच्छा (इसी जीवनमें लाया जाय तभी उनकी सार्थकता है। परमात्मप्रभुको प्राप्त करनेकी दृढ् भावना) और तीसरी शेष प्रभुकृपा। बात है महापुरुषकी संनिधि अर्थात् जीवनमें किसी (२) महापुरुषका सांनिध्य अथवा सत्संगकी प्राप्ति, महापुरुषोंद्वारा प्रभुका विधान मंगलमय है प्रणीत आर्ष ग्रन्थोंका—उनके सुन्दर चरितोंका पठन-आदरणीय बहनजी! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका एक पत्र दिनांक २३ अगस्त २०१७ ई० को हमारे पाठन करना। सन्त श्रीचरनदासजीने एक दृष्टान्त लिखा है-कोई गोरखपुर कार्यालयसे प्राप्त हुआ। कार्यव्यस्तताके कारण एक नगर था, जहाँका यह नियम था कि उस नगरका कोई पत्रोत्तर न दिया जा सका।

भाग ९२ \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* क्षण भगवानुकी शरणागति स्वीकार की थी, 'शिष्यस्तेऽहं आपने भगवानुके साथ एक वार्तालापके विषयमें शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' कहा था और गीताके अन्तमें लिखा, सो वस्तुत: इस प्रकारकी अनुभूतियोंमें भगवत्-चेतनाके आधानके समय हमारे व्यक्तिगत विचार, धारणाएँ **'करिष्ये वचनं तव'** कहकर भगवानुका आदेश पालन करनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसी क्षण उनकी विजय हो चुकी तथा अवचेतनमें रचे-बसे हमारे जन्म-जन्मान्तरके संस्कार भी बहुत अंशोंमें सक्रिय रहते हैं, अतएव वे विचार थी। तथापि उन्हें बड़े-बड़े महारिथयोंसे अठारह दिनोंतक स्वयंको तो प्रिय एवं सन्तोषजनक लग सकते हैं, परंतु भयंकर युद्ध करना पडा। बीच-बीचमें कई बार पराजयका–सा प्रसंग आया, निराशाकी घडियाँ आयीं; पर उन्हें सर्वांशमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। आप्त कोटिके महापुरुषोंके विचार और अनुभव अवश्य निर्भ्रान्त वे सब विजयके साधनमात्र थे। इसी प्रकार साधकके एवं सबके लिये कल्याणकारी हो सकते हैं। जीवनमें जो अपने प्राचीन स्वभावसे लडते-लडते कभी-आपके पत्रको पढकर प्रतीत होता है कि आप कभी थकान मालूम होती है-निराशा-सी होती है, वह तो उसकी सफलताके चिह्न हैं। उनसे जरा भी डरना या

साधनाके मार्गपर अग्रसर हैं, यह बहुत अच्छी बात है। अपने पति और परिजनों आदिमें ही ईश्वरके विभिन्न रूपोंका दर्शन करते हुए कर्तव्य-कर्मींको करते रहना चाहिये, शेष समयमें श्रीरामचरितमानस, भागवत इत्यादि ग्रन्थों तथा गीताप्रेससे प्रकाशित अन्यान्य सत्साहित्यका रुचिके अनुसार अध्ययन-मनन करते रहना चाहिये। जप, ध्यान, स्वाध्याय, लीला-दर्शन, लीला-चिन्तन जो भी हो सके, कैसे भी मनको भगवान्में लगाना चाहिये।

वे हमारा सर्वत्र मंगलविधान कर रहे हैं—यह भावना दृढ़

होनी चाहिये तभी शीघ्र कल्याण सम्भव है। यदि ऐसा

हो सके तो सर्वत्र आनन्द ही दुष्टिगोचर होना सम्भव

(3) सच्चे साधकके लिये निराशाका कोई कारण नहीं

है। शेष प्रभुकुपा।

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र

मिला। आप सच्चे हृदयसे यथासाध्य साधन करते हैं, नियमित स्वाध्याय करते हैं, जहाँतक बनता है भगवानुको याद रखनेकी और निषिद्ध कर्मोंसे तन-मन-वचनसे

बचनेकी चेष्टा करते हैं; तो भी अभीतक आपकी, आप जैसी चाहते हैं, वैसी स्थिति नहीं हुई है, इससे कभी-कभी

निराशा-सी हो जाती है—सो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। साधकके जीवनमें ऐसे बहुत-से अवसर आते हैं,

आपको जरा भी निराश नहीं होना चाहिये। अर्जुनने जिस

जब उसे निराशाका सामना करना पडता है, पर वास्तवमें

दिखायी न दे। अतएव आप जरा भी निराश न होइये। जो एक बार भी भगवान्के शरण हो गया है, उसके लिये शब्दकोशसे निराशाका शब्द ही निकल गया है। यह

घबराना नहीं चाहिये। प्रत्युत ऐसी स्थितिमें भगवान्के

बलपर अपनी सफलताका और भी दुढ निश्चय करना

चाहिये तथा साधनको और भी प्रबल बनाना चाहिये।

अमावस्याकी चार प्रहरकी रात्रि बीत जानेपर भी समीपमें

घडी न होनेकी अवस्थामें अन्धकार ज्यों-का-त्यों प्रतीत

होता है। इससे भूलसे ऐसा मानकर निराशा हो सकती है कि 'अमावस्याकी रात्रि तो वैसी-की-वैसी ही बनी है;

पता नहीं इसका अन्धकार कभी मिटेगा या नहीं।' परंतु

वस्तुस्थिति तो यह है कि अब प्रकाशमें बहुत ही थोडा-

सा समय अवशेष रह गया है। सूर्योदय होते ही अमावस्याका घोर अन्धकार जादुके घरकी तरह अकस्मात्

विलीन हो जायगा। उसका पता भी नहीं लगेगा। प्रभातके

प्रकाशसे सभी दिशाएँ प्रफुल्लित हो उठेंगी। इसी प्रकार

जब आपके साधनका परिणाम सहसा प्रकट होगा, तब

आपका भी रोम-रोम खिल उठेगा। आपको अपूर्व आनन्द होगा। जो साधक भगवत्कृपाका आश्रय लेकर सच्चाईके

साथ साधनमें संलग्न है और अपनी शक्तिभर साधन करनेमें प्रमाद नहीं करता, आप सत्य मानिये, उसकी

अमावस्याकी रात्रि लगातार कट रही है, चाहे वह उसे

निश्चय मानिये। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

# व्रतोत्सव-पर्व

"

,,

,,

,,

१५ ,,

१६ ,,

दिनांक

१९ "

२० ग

२१ "

२२ "

२५ "

२६ "

२७ ग

२८ "

२९ "

३० "

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।१ बजे।

भद्रा रात्रिमें ८।४५ बजेसे, धनुराशि दिनमें ११।४१ बजेसे।

कुम्भराशि दिनमें १०।४९ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें १०।४९ बजे।

भद्रा दिनमें ७।४२ बजेसे रात्रिमें ७।४२ बजेतक, मेषसंक्रान्ति दिनमें

१०। ३ बजे, **वैशाखी, खरमास समाप्त, मूल** रात्रिमें ३। ३८ बजेसे। **मेषराशि** रात्रि ३।५२ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रि ३।५२ बजे, **श्राद्धकी अमावस्या।** 

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

वृषराशि दिनमें ८। ४५ बजेसे, श्रीपरशुरामजयन्ती, अक्षयतृतीया।

भद्रा दिनमें २। १ बजेसे रात्रिमें १। १ बजेतक, वैनायकी

मिथुनराशि दिनमें १२।० बजेसे, आद्यजगदूरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती,

भद्रा सायं ५। ५५ बजेसे रात्रिशेष ४। ४३ बजेतक, कर्कराशि

सिंहराशि सायं ४। ४८ बजेसे, श्रीजानकीजयन्ती, श्रीसीतानवमी।

**भद्रा** प्रातः ५।४८ बजेसे सायं ५।४१ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।** 

**भद्रा** दिनमें ९।१२ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ८।१४ बजेसे, **मोहिनी**-

**मूल** दिनमें ३। २८ बजेतक, **भद्रा** रात्रिमें १०।९ बजेसे।

तुलाराशि रात्रिमें १।२८ बजेसे, नृसिंहचतुर्थदशी।

**पूर्णिमा, बुधपूर्णिमा, वैशाख-स्नान** समाप्त।

भद्रा दिनमें ९।४३ बजेतक, मूल दिनमें २।७ बजेतक।

भद्रा दिनमें ३।४४ बजेसे रात्रिशेष ४।३९ बजेतक।

सोमवती अमावस्या, मूल रात्रिमें ३।३८ बजेतक।

सायन वृषराशिका सूर्य दिनमें १०। २५ बजे।

मूल दिनमें ९। ३२ बजेसे।

**मकरराशि** रात्रिमें ११।२३ बजेसे।

वरूथिनीएकादशीव्रत (सबका)।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।

श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।

मुल सायं ६। १९ बजेसे।

एकादशीव्रत (सबका)

प्रदोषव्रत।

दिनमें २।२३ बजेसे, श्रीगंगासप्तमी।

मीनराशि रात्रिमें ८। ३२ बजेसे, प्रदोषव्रत।

सं० २०७५, <u>३</u>			- / .c		1111111111	3, 1,110	2
तिथि व	ार नक्ष	त्र	दिनांक	मू	ल, भद्रा, पं	ांचक तथा द्र	ात−पर्वादि

तुलाराशि सायं ५।४१ बजेसे। भद्रा रात्रिशेष ४।४३ बजेसे।

प्रतिपदासायं ४। ४४ बजेतक रिव चित्रा रात्रिशेष ५। ४९ बजेतक । १ अप्रैल सोम स्वाती अहोरात्र द्वितीया दिनमें ४।३२ बजेतक भद्रा सायं ४।५२ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिमें १।३१ बजेसे,संकष्टी

तृतीया सायं ४।५२ बजेतक मंगल स्वाती प्रात: ६।३३ बजेतक |३ 🕠

संख्या ३ ]

चतुर्थी 🕖 ५। ४४ बजेतक बुध

विशाखा दिनमें ७।५० बजेतक गुरु

अनुराधा 😗 ९।३२ बजेतक ज्येष्ठा 🗤 ११।४१ बजेतक शुक्र

पंचमी रात्रिमें ७।२ बजेतक षष्ठी 🕠 ८। ४५ बजेतक

सप्तमी 🗤 १०। ४३ बजेतक शनि मूल 🗤 २।७ बजेतक

रवि पु०षा० सायं ४।४३ बजेतक

सोम

मंगल

दशमी रात्रिशेष ४। ३९ बजेतक

उ०षा० रात्रिमें ७।१९ बजेतक 👂 श्रावण '' ९।४५ बजेतक १० बुध धनिष्ठा 🗤 ११।५४ बजेतक | ११ 🕠 शतभिषा 🗤 १।४० बजेतक १२ एकादशी प्रात: ६।७ बजेतक

एकादशी अहोरात्र

गुरु

शुक्र

शनि

चतुर्दशी "७।४१ बजेतक रिव रिवती '' ३।५२ बजेतक

वार

गुरु

शनि

मंगल

बुध

गुरु

रवि

सोम

द्वादशी 🗤 ७ । ९ बजेतक

त्रयोदशी दिनमें ७।४२ बजेतक

अमावस्या प्रातः ७। ११ बजेतक

तिथि

चतुर्थी 🗤 १। १ बजेतक

षष्ठी 🕠 ८।२३ बजेतक

नवमी 🗤 १। १३ बजेतक

दशमी 🗤 ११ । ४ बजेतक

एकादशी ग९।१२ बजेतक

चतुर्दशी 🗤 ५। ४८ बजेतक

पूर्णिमा ग५।३४ बजेतक

प्रतिपदा प्रात: ६।११ बजेतक मिंगल |

तृतीया रात्रिमें ३। ३ बजेतक बुध

पंचमी ''१०।४५ बजेतक शुक्र

सप्तमी सायं ५ ।५५ बजेतक रिव

अष्टमी दिनमें ३। ३० बजेतक सोम

द्वादशी ग७। ४० बजेतक शुक्र

त्रयोदशी प्रात: ६ । ३१ बजेतक शिनि

नवमी "२।५० बजेतक

अष्टमी 🗤 १२ । ४९ बजेतक

पु०भा० '' २।५१ बजेतक १३

सोम अश्विनी 🗤 ३।३८ बजेतक

नक्षत्र

कृत्तिका "२।२ बजेतक

रोहिणी 🗤 १२ । ४५ बजेतक

मृगशिरा 🗤 ११। १५ बजेतक

आर्द्रा 🗤 ९ । ३८ बजेतक

पुनर्वसु 🗤 ७। ५७ बजेतक

पुष्य सार्यं ६। १९ बजेतक | २३ 🗥

आश्लेषा ग४।४८ बजेतक २४ ग

मघा दिनमें ३। २८ बजेतक

पु०फा० 🕠 २। २४ बजेतक

उ०फा 🗤 १। ४२ बजेतक

हस्त दिनमें १। २३ बजेतक

चित्रा 🗤 १। ३२ बजेतक

स्वाती 🕠 २। १२ बजेतक

उ०भा० '' ३।३८ बजेतक १४ ''

भरणी रात्रिमें २।५९ बजेतक १७ अप्रैल

कृपानुभूति काशी विश्वनाथकी कृपाका फल काशीकी महिमा और भगवान् शंकरकी दयालुताका नागा लड़कीने भी हिन्दू बनना स्वीकार किया। कृष्णगोपालने

उसका नाम 'अक्षया' रखा। नागा लड़की ने 'अक्षया' वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं-

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर। जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

जरत सकल सुर बुंद बिषम गरल जेहिं पान किय।

तेहि न भजिस मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥ अर्थात् जहाँ श्रीशिव-पार्वती बसते हैं, उस काशीको

मुक्तिको जन्मभूमि, ज्ञानको खान और पापोंका नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय? तथा जिस भीषण हलाहल विषसे सब देवतागण जल

रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजीको क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु और कौन है?

भगवान् काशी विश्वनाथकी कृपालुताकी अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ उनकी कृपाकी एक सत्य घटना

प्रस्तुत की जा रही है— भारतके पूर्वोत्तरमें नागालैण्ड प्रान्त है। इस नागा

भूमिके लोग अपनेको नागजातिका मानते थे। जबसे उन्होंने स्वधर्म छोड़ा तबसे वे अपनेको नागा कहने लगे।

१९६३ ई०में असमके नागाबहुल पहाड़ी जिलों डिमाछा, करबी आदिको मिलाकर नागालैण्ड बना। आज वहाँके लगभग ७० प्रतिशत नागा ईसाई बन चुके हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघमें पूर्णकालिक कार्यकर्ताओंको देशके किसी भी प्रान्तमें सेवाहेत् भेजनेका प्रावधान है। नागालैण्डमें भी संघके स्वयंसेवक सेवामें लगे हैं।

आजसे लगभग ३० वर्ष पहलेकी बात है, केरलसे

कृष्णगोपाल संघके प्रचारक बनकर नागालैण्डमें आये। एक नागा युवती उनके सम्पर्कमें आयी और उनके विचारोंसे प्रभावित होकर उनसे प्रेम करने लगी। एक

दिन अपने पिताका घर छोड़कर वह उनके पास चली

नाम सहर्ष स्वीकर कर लिया। अक्षयाने अपना रहन-सहन, खान-पान-सब बदल दिया। पिताके घर वह मांस-मछली खाती थी, पर जबसे कृष्णगोपालकी पत्नी

> बनी, उसी दिनसे उसने मांस-मछली खाना सदाके लिये छोड़ दिया। उन दोनोंका दाम्पत्य-जीवन सुखपूर्वक बीत रहा

> था, परंतु शादीके १० वर्ष होनेपर भी अक्षया माँ न

हुआ है।'

बन सकी थी। उसने सुना, जो सच्चे मनसे काशी विश्वनाथकी विधिवत् पूजा करता है, उसे भगवान् काशी विश्वनाथ संतान देते हैं। अक्षयाको इस बातपर

विश्वास हुआ तो वह कृष्णगोपालके साथ काशी गयी। दोनों विश्व हिन्दू परिषद् कार्यालयमें ठहरे। दूसरे दिने वे भगवान् विश्वनाथके मन्दिर गये। मन्दिरके पुजारीने बड़ी श्रद्धाभक्तिसे विधिवत् पूजा करायी।

पण्डितजीने पूजाके बाद कृष्णगोपाल और अक्षयाको मन्दिरमें आशीर्वाद दिया—'आप लोगोंने सच्चे मनसे

विधिवत् काशी विश्वनाथकी पूजा की है। बाबा विश्वनाथ आप लोगोंको अवश्य ही एक पुत्र देंगे।' ठीक दस माहके बाद नागालैण्डके डिमापुरमें अक्षयाने एक गोरे-चिट्टे पुत्रको जन्म दिया। उसने

अपने पतिसे कहा—'मैं पुत्रका नाम 'विश्वनाथ' रखुँगी; क्योंकि मेरे पुत्रका जन्म काशी विश्वनाथके पूजनसे इस समय अक्षयाका पुत्र विश्वनाथ कक्षा दस

उत्तीर्ण कर चुका है। अक्षया कहती है—'अगर कोई वास्तवमें सच्ची भक्ति-भावनाके साथ विधिवत् काशी विश्वनाथकी पूजाकर संतान माँगता है, तो भगवान्

काशी विश्वनाथ उसके पुत्ररूपमें जन्म लेते हैं। अमिनिप्रसंहितप्रित्रिरहेरलेष्डिल्स्स्वितिस्त्रहर्मास्त्रहर्मास्त्रहर्मात्रहरम्

पढो, समझो और करो संख्या ३ ] पढ़ो, समझो और करो कन्याका पिता अपनी बुआके बेटेके पास गया, उसे (8) सम्बन्धोंकी सुगन्ध कुंकुम पत्रिका दी और सिर नीचे करके बैठ गया। जिनके पास पैसा है और जो उसे अच्छे कार्यमें बुआका बेटा सम्पन्न था, भाईकी स्थितिको समझता था। लगाते हैं, वे निश्चय ही श्रद्धाके पात्र होते हैं। मगर जिनके वह फौरन उठकर दूसरे कमरेमें गया और एक लिफाफेमें पास पैसा नहीं होता और जो तंगीमें जीवन व्यतीत करते रखकर दो लाख रुपये ले आया। भाई को लिफाफा देते हैं, वे यदि पैसेका मोह त्यागकर उदारतासे दूसरोंकी हुए बोला, 'भाई, बेटीका विवाह खूब आनन्दसे करना सहायता करते हैं, तो वे भी कम स्तुत्य नहीं होते। इस और भी कोई काम हो तो मुझे बतानेमें संकोच मत सन्दर्भमें मुझे एक घटना स्मरण आती है, लखन नामका करना।' आज लोगोंके पास दो पैसा आ जाता है, तब सामान्य आर्थिक स्थितिवाला एक व्यक्ति था, जो उनका दिल ही नहीं, नजर भी बदल जाती है। मदद सज्जनपुरा गाँवका रहनेवाला था। उसकी बेटीका विवाह करना और मीठा बोलना तो दुरकी बात, वे अपने गरीब था। इसलिये उसने गाँवके एक व्यक्तिसे दस हजार रुपये सम्बन्धियों, यहाँतक कि सगे भाइयोंको भी नहीं पहचानते कर्जपर ले लिये। लखनका एक बेटा मुम्बईमें किसी हैं। ऐसेमें उक्त प्रसंगोंको याद करता हूँ तब आँखें श्रद्धासे कारखानेमें काम करता था। वह घरसे अलग रहता था झुक जाती हैं। ऐसे प्रसंग पारिवारिक सम्बन्धोंमें सुगन्ध और अपना खर्च स्वयं चलाता था। उसकी भी एक बेटी घोल देते हैं, जिनसे व्यक्ति ही नहीं, समाज भी सुगन्धित हो उठता है।—नन्दलाल टांटिया थी, जिसके विवाहहेतु उसने दुरदर्शितापूर्वक कुछ रुपये बचा रखे थे। उसने लखनसे कहा, 'पिताजी, मैंने कुछ (२) पैसे अपनी बेटीके विवाहहेतु बचा रखे हैं, परन्तु अभी अपना अपना ही होता है। उसके विवाहमें देर है, अत: आप वे पैसे बहनकी शादीमें यह घटना काफी पुरानी है, पर है सच्ची घटना। लगा दीजिये और जो कर्ज लिया है, उसे लौटा दीजिये।' मेरे पडोसमें किशनलालजी पटेल रहते थे, जिनका आजकल कौन बेटा अपने पिता और बहनकी परिवार कृषिका व्यवसायकर अपना जीवन-यापन करता चिन्ता करता है। प्राय: सबको अपनी, अपने पत्नी-था। उनके दो पुत्र थे। दोनों भाइयोंमें अच्छा प्रेमभाव था। परंतु पिताके स्वर्गवासी होनेपर लोगोंके बहकानेमें बच्चोंकी चिन्ता पहले रहती है। कहावत भी है कि पहले घरमें दीया जलाया जाता है, फिर मस्जिदमें। आज हर एवं पत्नीकी शहपर छोटे भाईने बडेसे झगडा कर लिया और जमीन-जायदाद बाँटकर अलग-अलग रहने लगे। बाप अपने बेटेके लिये दूरकी मस्जिद हो गया है। मैं किसीको दोष नहीं देता हूँ, मैं इसे अर्थयुग की विषमता बोलचाल आपसमें बन्द हो गयी। एक दिन गाँवके मन्दिरमें रात्रि-जागरण था। दोनों ही समझता हूँ, जो आदमीको इन्सानी जज्बातोंसे शून्य कर देती है। ऐसे समयमें लखनका बेटा मुझे श्रवणकुमार-भाई भी आ गये। जागरण शुरू हुआ ही था कि अचानक सरीखा प्रतीत होता है। वर्षा होने लगी, अत: लोगोंका ध्यान बाहर पड़ी जूतियोंके एक धनाढ्य परिवारका उदाहरण देना चाहुँगा। भीगनेकी ओर चला गया। सब अपनी-अपनी जृतियाँ बेटीका विवाह था और पिताका हाथ बिलकुल तंग था। बरामदेमें रखने लगे। बडा भाई भी उठकर गया। उसने हाथ खुला हो अथवा तंग, बेटीका विवाह तो पिताको पहले छोटे भाईकी जुतियाँ बरामदेमें रखीं और फिर अपनी करना ही पडता है। कन्याके पिताने भी भगवानुके भरोसे रखीं। छोटा भाई यह सब देख रहा था। बडे भाईका विवाह मान लिया था। कुंकुम पत्रिका भी छपा ली थी, यह भ्रातुप्रेम देखकर उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये और उसी समय उसने बडे भाईसे क्षमा माँगी। दोनों मगर कहींसे कोई मदद या इन्तजाम नहीं हो सका था।

भाग ९२ \* एक ब्रीफकेस भी है, शायद वह आपका ही हो।' भाइयोंमें पुन: स्नेहका सागर उमड़ पड़ा और दोनों भाइयोंका परिवार फिर एक साथ रहने लगा। आखिर आशाकी एक किरन चमकी, हृदयमें कुछ सान्त्वना अपना, अपना ही होता है।—डॉ० श्याममनोहर व्यास आयी। मैं तुरंत लिफ्टसे नीचे आया देखा—वही रातवाला टैक्सी-ड्राइवर ब्रीफकेस लिये खड़ा है। मैं उससे कुछ आज भी ईमानदारी जिन्दा है पूछूँ, इससे पहले ही वह बोल उठा—'साहब! मुझे लगभग पचास वर्ष पहलेकी बात है, विदेशसे हमलोग बहुत दु:ख है और मैं इसके लिये शर्मिन्दा हूँ कि रातको बम्बईके शान्ताक्रूज हवाई अड्डेपर उतरे। लम्बी हवाई आपका ब्रीफकेस टैक्सीमें ही रह गया। आपको बहुत सफरकी थकावट थी। जल्दी किसी अच्छे होटलमें जानेके परेशानी हुई होगी। मैं इसके लिये माफी चाहता हूँ। लिये एक टैक्सी लेकर हम दोनों—पति-पत्नी मेरिन ड्राइवकी उसके इतने शब्दोंसे मेरे दिलमें दम आया। ड्राइवर ओर बढ़े। वहाँ तीन-चार होटलोंमें पूछताछ की, पर स्थान कहता गया—'अभी प्रात:काल सूर्योदय होनेपर जब मैं रिक्त न होनेके कारण आगे बढ़ना पड़ा। रात्रिके दो बजे टैक्सीकी सफाई करने लगा तो मुझे यह ब्रीफकेस दिखायी हमें एक अच्छे होटलमें स्थान मिला। ड्राइवरने टैक्सीसे दिया और मैं तुरंत इसको लेकर यहाँ दौड़ा आया हूँ।' यह सामान निकालकर होटलके कर्मचारीको सौंप दिया और कहते हुए उसने ब्रीफकेस मेरे हाथमें थमा दिया और फिर अपना किराया लेकर वह विदा हो गया। लिफ्टसे होटलके बोला—'साहब! इसे अभी खोलकर देख लीजिये, ऊपरके तल्लेमें पहुँचनेपर जब हमलोग अपना सामान आपका सब सामान दुरुस्त है न?' मैंने ब्रीफकेस खोलकर देखा, सभी सामान यथावत् सँभालने लगे, तब मुझे अपना 'ब्रीफकेस' वहाँ नहीं दिखायी दिया। ब्रीफकेस न देखकर मेरी दशा ऐसी हो गयी मानो था। मैंने जेबसे सौ रुपये निकाले और ड्राइवरको देते हुए मुझपर बिजली गिर पड़ी हो। मेरा मस्तिष्क चिन्तासे भर कहा—'आपको बहुत-बहुत धन्यवाद! हम आपके गया, मेरी स्थिति किंकर्तव्यविमूढ्की-सी हो गयी। अपनेको आभारी हैं। भारत-भ्रमणके लिये जो कुछ रकम हमलोग सँभालकर मैने तुरंत टेलीफोन उठाया और होटलके मैनेजरसे लाये थे, वह सब इसीमें थी। यह लीजिये आपका इनाम।' फोनपर पूछा। उत्तर मिला—'टैक्सीका सभी सामान आपके 'नहीं साहब! इनाम लेनेसे ईमान चला जाता है, कमरेमें पहुँचा दिया गया है।' अब शंका होने लगी कि हमें आप मिल गये और हमने आपकी चीज सही रूपमें ब्रीफकेस शायद हवाई अड्डेपर छूट गया हो, अत: छूटे सौंप दी, यह मालिककी कृपा है। वर्ना मुझे पुलिस हुए सामानको सुरक्षित रखनेवाले कार्यालयको फोन किया, चौकीमें जाना पड़ता। अच्छा नमस्कार"!' किंतु वहाँसे उत्तर मिला—'रातके ४ बज रहे हैं, इस समय टैक्सी-ड्राइवर चला गया। कुछ दिनों बाद जब कुछ भी नहीं हो सकेगा। आप सुबह फोन कर लें।' में विदेश लौटा, तब वहाँके अपने मित्रोंसे मैंने गर्वसे हमलोगोंकी नींद हराम हो गयी। विचार-विमर्श कहा—'हमारे भारतमें आज भी ईमानदारी जिन्दा है।' करते ही सूर्योदय हो गया। मेरी पत्नी तो प्रार्थना कर रही 'अखण्ड आनन्द'—युसूफ नूर कीडी थी और कह रही थी कि 'हमारे हककी चीज कहीं नहीं (8) जा सकती, कहींसे मिल ही जायगी।' परंतु मुझे उसकी बातपर खुरहा रोगका प्राकृतिक उपचार विश्वास नहीं हो रहा था। मैंने उसे उत्तर दिया—'यह प्रकृतिमें व्याधिनिवारणकी असामान्य क्षमता होती बम्बई नगरी है, यहाँ गयी हुई चीज वापस नहीं मिलती।' है। प्रकृतिके प्रधान घटक वृक्ष प्राणिमात्रका अनेक हमलोग इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि नीचेसे प्रकारसे उपकार करते हैं। इन्हीं वृक्षोंमें एक वृक्ष बबुल होटलके मैनेजरका टेलीफोन आया—'महाशयजी! नीचे (देशी) है, जिसके विभिन्न अवयवोंका मनुष्यों तथा आइये, एक सज्जन आपसे मिलने आये हैं। उनके हाथमें पशुओंके रोग-निवारणमें उपयोग होता है।

पढो, समझो और करो संख्या ३ ] हुए थे। संध्याके समय जबिक सैकड़ों पुरुष बारातमें गाय-बैलों तथा अन्य पशुओंमें भी 'खुरहा' (खुरपका) नामक एक अत्यन्त कष्टप्रद रोग होता है, आये हुए हों, उन सबके बीचमें उन्हें गिरफ्तार करनेकी जिसके कारण उनके खुर पकने लगते हैं तथा उनमें योजना थी। सारी व्यवस्था कर ली गयी। मवाद, कीड़े आदि हो जाते हैं। ऐसेमें पशु अत्यन्त हनुमानबक्सजीको दोपहरके बाद इसका पता लगा। उनको कष्टका अनुभव करते हैं, तीव्र प्रदाहके कारण कभी-बड़ी चिन्ता हुई। डिक्रीके कितने रुपये हैं, इसका उन्होंने कभी उनकी मृत्युतक हो जाती है। इस रोगके शमनका पता लगाया और रुपये कोर्टमें जमा करवाकर रसीद तथा सबसे सुगम उपाय यह है कि बबूलकी लगभग २०० वारंटकी वापसीका आदेश लेकर ठीक उस समय ग्राम ताजी छाल लाकर उसे १ ली० पानीमें भलीभाँति बिलासरायजीके उक्त सम्बन्धीके घर पहुँचे, जिस समय उबाल ले और तदुपरान्त सहन करनेयोग्य उस उबले हुए वह वारंटके साथ पुलिसको लेकर बारातके स्थानपर जा जलसे पशुके खुरोंको प्रतिदिन दो-से-तीन बार धुले। रहा था। रुपयोंकी रसीद दिखायी और वारंट वापसीका इस उपचारसे वेदना-दाह आदि तो तत्काल शमित आदेश दिखलाया। उक्त सम्बन्धी तो यह सब देख-होने लगते ही हैं, कुछ दिनतक नियमित धुलनेसे रोग सुनकर भौंचक्का-सा रह गया। हनुमानबक्सजीने नम्रताके भी नष्ट हो जाता है। साथ कहा—'भाई! तुम इतने निकट सम्बन्धी तथा घरसे यह रोगोपचार पूर्णतः निरापाद, सफल तथा मेरे सुसम्पन्न होकर भी बिलासराय-सरीखे ईमानदार सज्जनको द्वारा सैकड़ों बार परीक्षित है।—डॉ० श्रीनिवास पाण्डेय बिना उसे जनाये धोखेसे डिक्री करवाकर आज पकड्वाने (4) जा रहे थे, तुम्हारा यह काम हम सभीके लिये लज्जाकी आदर्श मित्र चीज है; ऐसा नहीं करना चाहिये।' उसने संकोचमें पड़कर हनुमानबक्सजीका बड़ा कारोबार था, उनके एक सिर नीचा कर लिया! मित्र बिलासराय भी व्यापार करते थे। उनका भी व्यापार बिलासरायजीको हनुमानबक्सजीने कुछ नहीं कहा। वे भी बारातमें गये। सब काम ठीक हो गया। ठीक चलता था। दोनोंमें बडा प्रेम था। समय बदलता रहता है; स्थिति परिवर्तनशील होती है। बिलासरायजीका बिलासरायजीको कुछ पता ही नहीं कि क्या हुआ है। डिक्री भरपाई करके उक्त सम्बन्धीने रजिस्ट्रीद्वारा व्यापार ढीला चलने लगा। दो-तीन ब्याह-शादीके बड़े खर्चके प्रसंग आ गये। इज्जतके अनुसार खर्च करना बिलासरायजीके पास भेजी, तब उन्हें पता लगा, पर यह पडा। ऋण हो गया। एक निकटस्थ सम्बन्धी थे। उनके नहीं मालूम हुआ कि रुपये उनकी ओरसे किसने जमा लगभग पैंतालीस हजार रुपये इनपर बाकी थे। वे सम्पन्न करवाये। वे उक्त सम्बन्धीसे मिले, तब उसने बतलाया थे और यह भी जानते थे कि इनके पास रुपये इस समय कि मैं तो नीचतावश आपको बारातके समय सैकड़ों नहीं हैं। होते तो ये तुरंत दे देते। बड़े ईमानदार हैं। परंतु आदिमयोंके बीच पकडवाकर बेइज्जत करना चाहता था, किसी कारणवश वे इनपर बहुत नाराज थे और द्वेषवश परंतु हनुमानबक्सजीने ऐसा नहीं होने दिया। पता लगते इन्हें तकलीफ देना चाहते थे। उन्होंने नालिश करके ही रुपये पूरे जमा कराके रसीद ला दी और वारंट खारिज किसी प्रकार गुपचुप डिक्री (न्यायालयद्वारा सम्पत्ति करवा दिया। लगभग बावन हजार रुपये थे। दिलानेका आदेश) करवा ली। बिलासरायजीको नालिश-उस समय बिलासरायजीको कितनी प्रसन्नता हुई डिक्रीका पता ही नहीं लगने दिया। डिक्री जारी करवा और मित्र हनुमानबक्सजीके प्रति उनका हृदय सदाके ली और रुपये न मिलनेपर गिरफ्तारीका वारंट भी निकलवा लिये कितना कृतज्ञ हो गया, उसका पूरा अनुमान भी दिया। उस दिन किसी एक विवाहमें बिलासरायजी गये नहीं लगा सकते। धन्य मैत्री!-ब्रजमोहन गुप्त

मनन करने योग्य धर्मो रक्षति रक्षितः वनवासके समय पाण्डव द्वैतवनमें थे। वनमें घूमते सरोवरके जलपर पहले ही अधिकार कर लिया है, तो समय एक दिन उन्हें प्यास लगी। धर्मराज युधिष्ठिरने वह जल तुम्हारा रहे। तुम जो प्रश्न पूछना चाहते हो, पूछो। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनका उत्तर देनेका वृक्षपर चढ़कर इधर-उधर देखा। एक स्थानपर हरियाली तथा जल होनेके अन्य चिहन देखकर उन्होंने नकुलको प्रयत्न करूँगा। यक्षने अनेकों प्रश्न पूछे। युधिष्ठिरने सभी प्रश्नोंका जल लाने भेजा। नकुल उस स्थानकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्हें स्वच्छ जलसे पूर्ण एक सरोवर मिला; किंतु उचित उत्तर दिया। उनके उत्तरोंसे सन्तुष्ट होकर यक्षने जैसे ही वे सरोवरमें जल पीने उतरे, उन्हें यह वाणी कहा—'राजन्! तुमने मेरे प्रश्नोंके ठीक उत्तर दिये हैं; सुनायी पडी—'इस सरोवरका पानी पीनेका साहस मत इसलिये अपने इन भाइयोंमेंसे जिस एकको चाहो, वह करो! इसके जलपर मैं पहले ही अधिकार कर चुका हूँ। जीवित हो सकता है।' पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे लो, तब पानी पीना।' युधिष्ठिर बोले—'आप मेरे छोटे भाई नकुलको नकुल बहुत प्यासे थे। उन्होंने उस बातपर, जिसे जीवित कर दें।' यक्षने आश्चर्यके स्वरमें कहा—'तुम राज्यहीन होकर वनमें भटक रहे हो, शत्रुओंसे तुम्हें एक यक्ष कह रहा था, ध्यान नहीं दिया। लेकिन जैसे अन्तमें संग्राम करना है, ऐसी दशामें अपने परम पराक्रमी ही उन्होंने सरोवरका जल मुखसे लगाया, वैसे ही निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भाई भीमसेन अथवा शस्त्रज्ञचूड़ामणि अर्जुनको छोड़कर इधर नकुलको गये बहुत देर हो गयी तो युधिष्ठिरने नकुलके लिये क्यों व्यग्र हो?' सहदेवको भेजा। सहदेवको भी सरोवरके पास यक्षकी धर्मराज युधिष्ठिरने कहा-'यक्ष! राज्यका सुख

द्मोतेवजर्भिकारहे०तर्डeनर्र्हे तेत्तिहर्मितरार्ट .gg/dhaस्त्रय्य प्राट्टी हत्स्त्राप्त रेट है छिन्द्रस्यान बहुतर्रहे ।

इसी प्रकार धर्मराजने अर्जुनको और भीमसेनको भी भेजा। वे दोनों भी बारी-बारीसे आये और उनकी भी यही दशा हुई। जब जल लाने गये कोई भाई न लौटे, तब बहुत थके होनेपर भी स्वयं युधिष्ठिर उस सरोवरके पास पहुँच गये। अपने देवोपम भाइयोंको प्राणहीन पृथ्वीपर पड़े देखकर उन्हें अपार दु:ख हुआ। देरतक भाइयोंके लिये शोक करके अन्तमें वे भी जल पीनेको उद्यत हुए। उन्हें

पहले तो यक्षने बगुलेके रूपमें रोका; किंतु युधिष्ठिरके पूछनेपर कि—तुम कौन हो? वह यक्षके रूपमें एक

शान्तचित्त धर्मात्मा युधिष्ठिरने कहा—'यक्ष! मैं

वृक्षपर दिखायी पड़ा।

वाणी सुनायी पडी। उन्होंने भी उसपर ध्यान न देकर

जल पीना चाहा और वे भी प्राणहीन होकर गिर गये।

जीवित रहे। तुम नकुलको जीवित करके दोनोंको पुत्रवती कर दो।'
यक्षने कहा—'तुम अर्थ और कामके विषयोंमें परम उदार हो, अतः तुम्हारे चारों भाई जीवित हो जायँ। मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ। तुम्हे देखने तथा तुम्हारी धर्मनिष्ठाकी परीक्षा लेने आया था।'

धर्मने अपना स्वरूप प्रकट कर दिया। चारों

या वनवासका दु:ख तो भाग्यके अनुसार मिलता है;

किंतु मनुष्यको धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। जो

धर्मकी रक्षा करता है, धर्म स्वयं उसकी रक्षा करता

है। इसलिये मैं धर्मको स्वयं नहीं छोड्ँगा। कुन्ती

और माद्री दोनों मेरी माता हैं। कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ। अतः मैं चाहता हूँ कि मेरी दूसरी माता

माद्रीका वंश भी नष्ट न हो। उनका भी एक पुत्र

िभाग ९२

#### Dear Contributors,

**Bhakti** annual number of **Kalyana-Kalpataru** published last year, was well received by our kind readers. It is only due to Divine Grace and affectionate efforts of our contributors. This year we propose to publish **Welfare to All** as **annual number** in **2018**.

The whole universe which we see around us, be it human beings, animals or plants or other life forms, all are manifestations of the Supreme Divine whom we call by different names. As human beings, it is our special responsibility to protect and help every part of this beautiful creation of God.

With this view in mind Kalyana-Kalpataru is to publish the next annual number in October 2018 on Welfare to All. You are requested to send your articles on any of the topics suggested below or any other topic relevant to the theme. The write-up should be concise and lucid. Typed matter should be sent to reach us before 30th June, 2018.

#### Welfare to All

- 1. What is real welfare 2. Why one should think of other's welfare? 3. Welfare vs. Achievement, development and growth 4. Physical vs. Spiritual welfare 5. Social vs. Individual welfare
- 6. **Dimensions of welfare:** (i) Spiritual Quest (ii) Intellectual pursuits (iii) Material Development (iv) Social Reforms (v) Moral Uplift (vi) Discoveries and Innovations (vii) Compassion and Empathy (viii) Environmental Protection
- 7. Universal welfare 8. National welfare 9. Welfare of Nature—Protection and growth
- 10. Welfare of Humankind: (i) Child Welfare (ii) Women Welfare (iii) Welfare of poor and helpless (iv) Welfare of patients
- 11. Welfare of animals and birds 12. Welfare of Plant-life and forests 13. Helping victims of natural calamities—flood, earthquake, fire, cyclone 14. God-realization through altruistic attitude 15. Sādhanā for developing altruistic attitude 16. Welfare through positive thought, word and action 17. Shining instances of spreading welfare: Puranic characters like Rantideva and others Historical characters—
  - (i) Gautam Buddha (ii) Mahātmā Gāndhī (iii) Florence Nightingale (iv) Swāmī Rāmānujācārya (v) Abraham Lincoln (vi) Others.

Modern instances of exemplary altruistic behaviour

### 'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

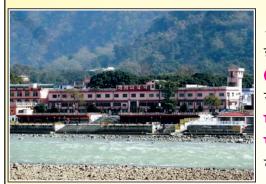
- १- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक
- ३- मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ५- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।
  - मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन–कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन–कार्यालय के लिये)—प्रकाशक



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

# गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना



गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धाल एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल एकादशी ( २७ मार्च )-से सत्संगका आयोजन किया गया है। इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामुहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है। गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये। पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामृहिक यज्ञोपवीत

<mark>संस्कार दिनांक १८ जून (शुद्ध</mark> ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी पूजा १७ जूनको प्रारम्भ <mark>हो जायगी। इच्छुक जनोंको १६ जूनतक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।</mark>

<mark>गीताभवनमें संयमित साधक-</mark>जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ <mark>आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।</mark>

<mark>महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने,</mark> महँगे मोबाइल आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको <mark>मतदाता पहचान-पत्र</mark> अथवा फोटोयुक्त अन्य <mark>पहचान-पत्र</mark> रखना आवश्यक है। व्यवस्थापक — गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम — २४९३०४

# प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें दिनांक ६ जनवरीसे १४ जनवरीतक आयोजित २६वें विश्व-पुस्तक मेलेमें गीताप्रेसका भव्य पुस्तक-स्टॉल



सीमित संख्यामें अभी उपलब्ध— गीता दैनन्दिनी २०१८ ( कोड 506 ) पॉकेट साइज मूल्य ₹ ३५ एवं (कोड 1769) लघु आकार मूल्य ₹ २०।